हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्य

हिमाचल प्रदेश के लोक नृत्य

(पुरस्कृत नवीन सस्करण)

डा० हरिराम जसटा

प्रकाशक
सम्भाग प्रकाशन,
16-यू० बी०, बंग्लो रोड,
जवाहर नगर, दिल्ली 110007

प्रथम संस्करण 1978
द्वितीय संस्करण 1979
तृतीय संस्करण 1990

आवरण हरिप्रकाश त्यागी

मूल्य 80 00 रुपये मात्र

मुद्रक एस० एन० प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

समर्पण

बहिन पम्मी को

जो अब नहीं रही

□□□

उसने जब यह सोचा कि एक कलिका के संग,

कितने तुतले अरमान बंधे हैं मधुवन के ?

तब उसे ज्ञात यह हुआ कि एक सांस के संग,

कितने सपने जीते मरते हैं जीवन के।

□□□

आमुख

जीवन की परिभाषा कुछ भी हो, पर यह एक अनुभूति तो है ही। अनुभव कमे भी हों वे समय-सरिता म अपने विविध रगो से भरपूर घटनाओ के रूप मे बहते हैं। अनुभव सीधे-सादे भी हो सकते हैं जसे बच्चा और ग्रामीण लोगा के, ये जटिल भी हो सकते हैं जसे वज्ञानिको, कलाकारो और नेताओ के। ये बच्चो के निरुद्देश्य हाथ घुमाने और भटकती दष्टि से लेकर महात्माओ के नियन्त्रित जीवन और नतक की विवेकपूण हिलन जुमन तक हो सकते हैं।

यही नही ये अनुभव तो किसी वस्तु को शरीर रूप मे अवलोकित करने और उसके परिचालन स लेकर आविष्कार और अमूत एव जटिल भावो को सुव्यवस्थित रूप देन तक हो सकते हैं। जीवन के बारे मे यह भी कहा जा सकता है कि यह सजीव शरीर और आत्मा का उत्तेजन और प्रतिक्रिया है। उन पचभूता के आश्चय और हृप का शरीर द्वारा कायरत करने, उत्सुक और बेचन हाथो को किसी प्रेरणा के वशीभूत घुमान, जिह्वा का अभिव्यक्ति के लिए तडपना और मन का विचारो से प्रेरित होकर विह्वल होना ऐसे बहुरूपी अनुभवो क कुछ भागो या किसी रूप का स्मरण करना या लिपिबद्ध कर लेना भी कला का एक महत्त्वपूण अग है और उसे सुरक्षित रखने का एक सदप्रयास है।

जिस हद तक जीवन मूत है, अभिव्यक्ति है, वह एक कला है, और उसी सीमा तक सभ्यता की अव्यवस्थित स्थापना मे सामजस्य स्थापित करना कला कृति है।

इन्ही भावो से ओत प्रोत होकर मैंने हिमाचल प्रदेश के परम्परागत जातीय लोकनत्यो के वाह्य रूप के अव्यवस्थित क्रम मे सामजस्य खोजने का प्रयास किया है। कलारूपी अथाह सागर से मैं कुछ सीपिया सजो पाया हू जबकि वह असीम सागर ठाठें मारता हुआ गतिमान है। मैं कहा तक इस उद्देश्य मे सफल हुआ हू, यह निणय मैं प्रबुद्ध पाठको पर छोडता हू।

बाल्यकाल से लेकर अब तक पहाडी लोक नृत्यकला के जितने रूप अन्तस्तल पर अकित हुए, हिमाचल के गाव गाव म घूम घूमकर इन मनोहर लोकनत्यो की जो रगीन छवि दष्टि-पथ म समाकर हृदय मे उतर गई, उसी थाती को तीव्री

करण के फलस्वरूप स्पष्टीकरण और प्रस्तुतीकरण इस कृति द्वारा सहृदय पाठकों के सामने रख रहा हू । आशा है इसका आशातीत स्वागत होगा ।

यहा हिमाचल प्रदेश के जिन लोक-नृत्यो का वणन किया गया है, उनम यह पूर्वानुभव भी निहित है कि इन सबका एक सु यवस्थित रूप कसा होगा या होना चाहिए ।

हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यो की मूल प्रेरणा-स्रोत यहा के प्राकृतिक सौदय के जादुई रूपो ऊची-ऊची पवत श्रणियो, हरी भरी वादियो नित्य सगीत गात हुए बहते नदी नाले और झरने गाव गाव म नित्य पूजे जाने वाले देवी देवता और लहलाहते खेतो मे मिलता । जीवन के प्रत्येक चिह्न म ग्रामीण लोग ईश्वरीय विधान का रहस्य पाते हैं और इस सत्य को ऐसे भक्तिपूण प्रतीको द्वारा प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं जो प्राय प्रत्यक देवी देवताओ को जिन्हे सष्टि रचना और उसकी दवी शक्ति का रूप समझा जाता है—समर्पित ऋतुओ के अनुरूप घोषित किया जाता है ।

इन सब लोक नत्यो के मूल म स्वाभाविकता रहती है और नतक इस स्वा भाविकता को स्वतत्र रूप म एक निश्चित शली म प्रकट कर सकते हैं । इन लोक नत्यो द्वारा दूरस्थ गावो मे शाति और सामूहिक जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए जिस सहयोग और एकता की भावना की आवश्यकता होती है, ये सब इनम उपल ध होता रहा है । सार लोकवाद्यो का रख रखाव, और उपयोग लोक वादको के जीवन निर्वाह का प्रबध और समय पर एकत्र होकर नत्य करना ये सभी काम स्वचालित यत्र की तरह चलत रहे हैं । उसी भावना को इन लोक नत्यो के मूल आदर्शों को सुरक्षित रखकर जीवित रखा जा सकता है यह मेरा विचार है ।

हिमाचल प्रदश के लोक जीवन सम्बधी अपनी पुस्तक हिमाचल गौरव जब मैं भूतपूव मुख्यमत्री डा० वाई० एस० परमार और तत्कालीन एकादमी अध्यक्ष श्रीयुत लालचद प्रार्थी को भेंट कर रहा था, तो सबसे पहली बात उन्होंने हिंदी की पुस्तकों के मुद्रण साज-सज्जा के साथ साथ यह भी उठाई कि हिमाचल गौरव मे प्रस्तुत किए गये प्रत्येक विषय पर एक स्वतत्र प्रामाणिक ग्रथ की रचना होनी चाहिए। उसी स्वप्न को साकार करने का मेरा यह प्रयास रसिक पाठको के सम्मुख है ।

मुझे आशा है कि हिमाचल प्रदेश के दुर्गम एव दूरस्थ ग्रामवासियो ने जिस श्रद्धा, प्रेम भक्ति, साधना और आदर से आज तक अपने लोक-नृत्यो को जीवित और सुरक्षित रखा, वही भावनाए विज्ञान और तकनीकी की तीव्र आधी से इन्हें धूल धूसरित होने स बचाने के लिए आज भी विद्यमान हैं । उन्ह सुरक्षित रखने का विनम्र आयोजन प्रस्तुत रचना है । परतु जस तरा की सी पुस्तक पढ़कर कोई

तै (र नही बन जाता, वैसे ही, मैं भी भली भाति जानता हू कि हिमाचल के लोक नृत्यो का रसास्वादन या प्रशिक्षण केवल इस पुस्तक को प लेन से प्राप्त नही हो सकता। इसके लिए ता परम्परागत लाक वाद्या वशभूषा, प्राकृतिक सौदय, लोक गीत, श्रद्धा, श्रम-साधना से अभिभूत होकर प्रदर्शित इन लोक-नत्यो को आज और भविष्य मे भी जीवित रखने की उतनी आवश्यकता है जितनी पहले भी थी, ताकि भारतीय कला की अमर आत्मा लोक-नत्य अपने रस, रग और वैभव से जनमानस की सुदरतम अनुभूतियो को रसास्वादन भविष्य की पीढियो को भी दे सकें और इस प्रकार भारतीय सस्कृति का एक महत्वपूर्ण अग होने के नाते सतत स्फूर्ति और आनन्द देते रहे।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रयोजन पाठको को पहाडी लोक नत्य सिखाना या इन लोक-नत्यो पर भरत मुनि की तरह एक आधुनिक नत्यशास्त्र की रचना करना नहीं, अपितु इन लोक-नत्यो के सम्बन्ध म फैली अनेक भ्रातियो को दूर करना और इन्ह वास्तविक परिप्रेक्ष्य म प्रस्तुत करना है। इसलिए मेरे प्रयास को अपने विषय की भूमिका एव परिचयात्मक विवरण ही समझा जाये, क्योकि लोक-नत्यो पर शास्त्रीय नत्यो की तरह कोई प्रामाणिक और विस्तत ग्रन्थ लिखने का साहस व्यथ भी था।

इस पुस्तक के लिए कुछ रेखाचित्र आयुष्मान सुपुत्र नरेश जसटा के सौजन्य से प्राप्त हुए और इस ग्रन्थ की रचना के लिए अमूल्य समय दिया मेरी जीवन सहचरी कलावती जसटा सपुत्री वीणा वादिनी और पूणम जसटा ने। मैं सबके प्रति आभार प्रकट करता हू।

अम्बिका निवास, सजौली
शिमला 6

—हरिराम जसटा

दूसरे सस्करण की भूमिका

'हिमाचल प्रदेश के लोकनृत्य' पुस्तक का यह दूसरा सस्करण प्रकाशित करके पाठको के हाथ म देते हुए हम हष हो रहा है। इससे पुस्तक की उपयोगिता एव लोकप्रियता प्रमाणिक है और साथ ही यह सत्य भी विद्व मण्डल म चर्चा का विषय बना है कि प्रो० हरिराम जसटा हिमाचल प्रदेश के उन गण्यमान्य अधिकारी विद्वान लेखको की प्रथम पक्ति म आसीन हैं जिन्होने भारतीय पुरातन सस्कृति के इस प्रदेश का सास्कृतिक, धार्मिक सामाजिक, प्राकृतिक एव भौगोलिक सौ दय आत्मसात किया है।

प्रो० जसटा ने इस पुस्तक से पूर्व 'हिमाचल गौरव' पुस्तक लिखकर ख्याति अर्जित की है। हिमाचल प्रदेश के लोक-जीवन से सम्बद्ध यह उनकी दूसरी उत्कृष्ट कृति है। इसम हिमाचल प्रदेश की एतिहासिक पृष्ठभूमि का गहरा अध्ययन किया गया है भाषा साहित्य और कला सम्बन्धी प्रगति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे निरूपण पाठको के लिए एसी सामग्री प्रदान करता है जो अब तक कदाचित् ही हिन्दी क पाठको को पढ़ने को मिली है।

लोक-नत्य सास्कृतिक, धार्मिक एव सामाजिक परिवेश से सम्बद्ध होते हैं। मानव मन की गहरी अनुभूति भरी उल्लासमयी लहरो का साकार रूप इन लोक नत्यो म उभरता है। लोक नत्य उत्सव, पव, विवाहादि पावन सस्कार, सामाजिक चेतना और प्रकृति एव मानव के अटूट सम्बन्ध के परिचायक होते हैं। परिवर्तित ऋतु चक्र से लोक-नत्य प्रदेशवासियो को कसे प्रभावित करते हैं। यह सौन्दय आयोजित सयोजित लोक-नृत्यो म ही दष्टिगत होता है।

लखक ने इस नवीन कृति म हिमाचल के सावजनीन लोक नत्यो पर अपनी समथ लेखनी के बल से किन्नौर, लाहौल स्पिति, कुल्लू, चम्बा कागडा, शिमला, सिरमौर आदि क्षेत्रो के लोक-नृत्यो की स्थानीय रग रूप वेशभूषा, अलकरण सभरण के साथ शब्दबद्ध किया है। लोक-सगीत और लोक-नृत्य के सम्बन्ध का विवेचन करते हुए लोकधर्मी नाटयानुरूपी लोक-नत्यो का ऐसा विस्तत विश्लेपण

इसका स्वागत करेंगे ।

पिछले 300 वर्षों से भी अधिक काल स नत्यकला का अधिक आदर भाव से नही देखा जाता था। इस दौरान नत्यकला मदिर म नियुक्त देवदासियो, नत्यागनाओ या ग्राम्य निम्नवग तक ही सीमित रही। इनके सामाजिक बुराइयो से जुडे होने के कारण नत्यकला को घटिया लोगो का मनोरजन समझा जाता रहा है।

स्वतत्रता के बाद नत्यकला के प्रति कला पारखियो उच्चवग की जनरुचि और लोकप्रिय सरकार के दष्टिकोण मे धीरे धीरे परिवतन आने लगा। अब तो प्रत्येक राज्य के विशेष उत्सवो और राष्ट्रीय सास्कृतिक समारोहो म लोकनत्य को विशप आदर प्राप्त होता है।

सीधे-सादे परिश्रमी होने के साथ साथ ग्रामीण जनपदो म स्थानीय लोक नत्यो एव लोकगीतो के प्रति ज मजात अतर्बोध है। उनमे अत्याधिक अभिनयीय प्रतिभा है और सहज भाव स लोकनत्य प्रदशन म उ हे विशिष्टता हासिल है। लोकनतक क मच पर या किसी ग्राम्य उत्सव मे प्रदशन म प्रवेश करते ही भारत की सदियो पुराना लाकपरम्पराए वसत सी ताजगी लिए दशकों के सामन आ खडी होती हैं। इसी ताजगी को बरकरार रखने के लिए प्रस्तुत कला-कृति नत्य कला पारखियो के सामने प्रस्तुत कर रहा हू।

15 अप्रल, 1990 —डा० हरिराम जसटा

अम्बिका निवास, (इजन घर),
सजौली शिमला—171006

अनुक्रम

लोक-नृत्य

यद्देवा अद सलिले सुसरब्धा अतिष्ठत।
अत्रावो नत्यतामिव तीव्रो रेणुरजायत ।।

—ऋ० 10।72।6

कला की कोई परिभाषा स्पष्ट रूप से सभव नही। फिर भी कला की अनेक परिभाषायें की गई हैं। प्रत्येक परिभाषा द्वारा कला के किसी एक पक्ष पर सामान्य प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। अनेक परिभाषाओ से कला के व्यापक स्वरूप के दर्शन होते हैं कला का स्वरूप एक नही अनेक है। वास्तव म कला अव्यवस्थित अनुभवो को सुव्यवस्थित रूप देने एक शृखला क्रम बनाने सतत विनाशी अवोधगम्य प्रवाह का स्थायित्व की मर्यादा और अर्थ देने का एक माध्यम है। जमन कवि गटे के अनुसार कला आत्मा का सम्मोहन है और शिलर की मान्यता है कि इसके द्वारा मानव को खोया हुआ गौरव प्राप्त होता है। वेग्नर कहते हैं— 'मानव म अपने अस्तित्व का जो रूप है, वही कला है या मानव के सामूहिक जीवन का उच्चतम आविर्भाव है। ए० क्लटटन ब्रोक का कथन है—"जब मानवता का सारा ज्ञान निपुणता और आवेग इनसे भी श्रेष्ठ स्वीकृति म उडेल दिया जाता है वही स्वीकृति कला है। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के शब्दो म मानव के पास भावनात्मक शक्ति का भडार है जो सारा आत्म-रक्षा पर ही व्यस्त नही होता। कला इस अधिशेष पर ही निर्मित होती है। इस अधिशेष शक्ति का यदि सदुपयोग न किया जाय तो दुष्परिणाम हो सकते हैं।

व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कला के द्वारा कलाकार का सामूहिक रूप म काय भी मानव जीवन के लिए उतना आवश्यक है जितना हवा, पानी और रोटी कला मानव जीवन का मूल रस है। जीवन के प्रकटीकरण और उसे एक अर्थ देने का रूप साधन है। यह केवल इन्द्रिय सुख व धनी लोगो को सुख देने वाला विलास नही। इसका तो अधिक गहरा आधार और महान उद्देश्य है। कला आत्मा की सच्ची पुकार है। कला ससार म प्रेम आनन्द और सौन्दय की सृष्टि करती है।

देश काल और परिस्थिति अनुकूल समय-समय पर कला की परिभाषा, रूप तथा विषयवस्तु में परिवर्तन होता रहा है। परिवर्तन के महत्त्व को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

कला की जो सच्ची सृष्टि है उसमें आनन्द एवं सत्य के साथ सौन्दर्य का ऐसा समावेश होता है कि वह कल्याणरूप धारण कर लेती है तो भी स्वयं कलाकार देश और काल की सीमा से बद्ध रहता है। इसीलिए कला की सच्ची सार्थकता तभी है जब लोक कला होती है। यह लोक कला जीवन से सम्बद्ध रहती है। वह एक विशिष्ट वर्ग की कला नहीं होती वह साधारण जनता की कला हो जाती है।

हम अपने राष्ट्र की लोक कला और शास्त्रीय कला द्वारा संसार को अपने राष्ट्रीय जीवन की चेतना का संदेश पहुंचा सकते हैं। यही नहीं संगीत, नृत्य, चित्रकला व दूसरे मनोविनोद केवल सुख के ही नहीं आत्म नियन्त्रण के भी उपकरण हैं। वह इन्द्रियों का असह्य या अपरिष्कृत विषयोपयोग के बिना सुख पाने का अभ्यास कराते हैं। यह कह सकते हैं कि वस्तुतः सब ललित कला संयम का ही साधन हैं सुख तो उनका आनुषंगिक फल है।

बिना कला के मानव जीवन अधूरा है। मानव की भावनाओं का विकास कला द्वारा ही संभव है। एक कहावत है—यदि तुम्हारे पास दो रोटियां हैं एक बेचकर पुष्प मोल ले लो—तात्पर्य यह है कि अपने समीप सौन्दर्य भी उतना ही आवश्यक है जितना भोजन।

कला मानव जीवन को शाश्वत प्रवाह में पकड़ने का प्रयत्न करता है। इसके द्वारा जीवन की अच्छाई को स्वीकृति मिलती है और स्वयं जीवन को नवस्फूर्ति। इसका आविर्भाव कलाकार के मूल अनुभवों से होता है, जो स्वयं के लिए, सहयोगियों के लिए नया अनुभव बनता है और फिर इसके स्वतन्त्र अस्तित्व से समस्त जातीय चेतना समृद्ध होती है।

सौन्दर्य और आनन्द का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। सौन्दर्य सतत आनन्ददायक है। जहां आनन्द नहीं वहां सौन्दर्य भी नहीं। एक कवि सौन्दर्य की अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा, नृत्यकार शरीर के अनेक अंगों की सिहरन द्वारा और एक सुसंस्कृत व्यक्ति शिष्टाचार एवं विनम्र व्यवहार द्वारा करता है। विभिन्न युगों जातियों और देशों द्वारा सौन्दर्य पिपासा शब्द रंग पाषाण शरीर, जीवन और चरित्र की क्षणिक मीमांसा द्वारा सीमित नहीं की जा सकी। प्रत्येक व्यक्ति इस उत्कंठा को नहीं मिटा पाता क्योंकि लिज्जत सहरानवर्दी दूरिये मंजिल में है।

जब चरम सुख सौन्दर्य की जीवन शक्ति उपलब्ध हो जाती है तब दिव्य जीवन के द्वार खुल जाते हैं और फिर क्रूर काल भी उन्हें बन्द नहीं कर पाता।

शिष्ट कला और लोक कला

कला द्वारा हृदय की सलोनी रूप रेखा की अभिव्यक्ति सवप्रथम कब और किस रूप म हुई इस शृंखलाबद्ध निश्चित ढग स सतोपजनक उत्तर अभी तक सभव नही हो पाया। फिर भी कला क इस विश्लेषण का निष्कप भारतीय सदभ म यह तो निकाला ही जा रहा है कि जो तत्त्व भारतीय समाज को, उसकी समस्याओ को पहचानन म समय है वह सुख और सौदय की अनुभूति भारतीय कला म निहित है। इसलिए कला यदि कला के विकासशील जीवन अध्ययन क दो रूप मान लिए जायें तो उसके वास्तविक रूप की पहचान कर पायेंगे। इस विषय म श्री राम इकबालसिंह के विचार उल्लखनीय है, "प्राचीन सस्कृति की रेशम डोर म जकडी हुई लोक कला मानव पीढिया क सुख-दुख की गाथा की जिसम जीवन की हरी अमर बेल चारो ओर लिपटी है, ओजमयी है। लोक-कला सनातन रीति-नीतियो के अतमुख नियम स समन्वित और धरती की रौंदी हुई मिट्टी की महिमा स मडित ससार की एक अनमोल निधि है। शिष्ट-कला के गगनचुम्बी मन्दिर के निर्माण मे लोक कला को काल की उदर दरी क नीचे नीव की प्रथम शिला के रूप म गडे रहने का श्रेय प्राप्त है। एतिहासिक मान्यता क अनुसार आज से करीब सवा लाख वष पहले लोक-कला ने गर्भावस्था स बाहर निकलकर दुनिया को प्रथम बार देखा। उस युग मे मनुष्य न प्रकृति की परस्पर विरोधी और लौह शलाका की मजबूत शक्तियो क साथ सघप करते हुए एक सीमित पमाने पर एम प्राण सहारा कला प्रतीका की रचना की जो जीवन की दिशा म उनक अस्तित्व कायम रखने क लिए एक महती शक्ति सिद्ध हो—जो शिष्ट कला मानव-सभ्यता और सस्कृति के रूप म सज सवरकर आज विकसित रूप म हमारे सम्मुख है लोक कला निसन्देह उसकी नीव का पहली शिला है। लोक कला ने अभी भी कोई बधन स्वीकार नही किया। लोक कला ग्रामीण जनता की सहज अभिव्यक्ति का ही एक स्वरूप है। जहा वह समाज के अतीत अनुभव सजोकर रखती है वहा वतमान के भी प्राणो का उसम स्पदन रहता है।

लोक कला की प्रत्यक्ष सरल और निष्ठामय अभिव्यक्ति आडम्बर विहीन और अकृत्रिम होती है। सीधे सादे व्यक्तियो द्वारा सीधी सादी आवश्यकतायें पूरी करने के लिए विरचित लोक कला का कृतियो की विषयवस्तु म रूप विन्यास और प्रदशन की बजाय नियात्मकता को ही प्रधानता दी गई है, किन्तु वे मानव मन की गहराइया मे बठे सौदय-बोध की भी तुष्टि करती हैं। इन कला अभिनयो की कल्पना विशुद्ध मौलिक और निर्भीकतापूण है। उनम एक ऐसा अनोखा आकपण है जिसका ललित-कला की औपचारिकता कृतिया म पूणतया अभाव

नत्य का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना मनुष्य जाति का। वास्तव म नत्य लोक-जीवन स ही विकसित हुआ। लोक-नत्य कला का एक अभिन्न अग है। नत्य मूक कविता है। कविता की तरह नत्य भी हृदय को आनदित करता है। जब मा प्यार स अपन नन्हे मुन्ने को हसाने के लिए गुदगुदाती है, वह हस पडता है। कभी मा को हसता देखकर, वह भी हस पडता है। जब वह पूछ बठ्ती है चप क्या हो? वह झूमकर नतन करने लगता है, तब वह समझ जाती है कि वह प्रसन्न है। लोक-नत्य की पष्ठभूमि मे भी वही भावना रहती है।

भक्त इष्ट देवता की आराधना करन के लिए पूजा का पात्र या मदग हाथ म ले आत्म विभोर हो झूमन लगत हैं। सारे वातावरण म भक्ति की एक लहर-सी दौड पडती है। यही सत्य लोक-नत्य की प्ररणा है।

जस कवि अपनी कविता द्वारा, मूर्तिकार मूर्ति द्वारा चित्रकार चित्र द्वारा सुन्दर अभिव्यक्ति करत हैं, वस ही कुशल लोकनतक अपने शरीर के विभिन्न अगों को थिरकन देकर अतस्तल की भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। इसी प्रबल भावना ने मानव को सौन्दय रचना की प्रेरणा दी तथा मिल-जुलकर सुख दुख की अभिव्यक्ति देन क माध्यम की खोज की। मानव द्वारा किए गए सामूहिक प्रयास स कला का उद्भव हुआ है। लोक-कला धरती स अकुरित हुई कला है मानव की मूल प्रवत्तियो का स्मरण दिलाती है। लोक-कला म लोक-नत्य का अपना सवप्रथम स्थान है। सरलता, सवेदना सहकारिता स्फूर्ति रग वभव तथा शक्ति के इस सगम म कला सम्पूण रूप स प्रस्फुटित होती है।

कटसाश ने ठीक ही कहा है— नत्य कला की जननी है। सगीत एव काव्य का अस्तित्व काल म है। चित्रकला और शिल्पकला शून्य म परन्तु नत्य का अस्तित्व दोनो म है। निर्माता और निर्मित वस्तु कलाकार और काय एक ओर वही है। यहा तक कि वह लोग जिनक पास निधनता के कारण अन्य कला के लिए कोई साधन नहीं वे भी अपने शरीरो म लयात्मक गति का प्रतिमान पा सकत हैं। शून्य को रूपकर भावना और दृश्य तथा कल्पित विश्व का विशद चित्रण लोक-नृत्य म है। इसलिए लोक मानस पर जितनी अधिक छाप लोक सगीत की है उतनी अन्य किसी का नही। सुगठित शरीर, आत्मा की कविता और सगीत तथा लोक-नत्य मानव की सस्कृति के सर्वोत्तम उपकरण बन जात हैं। पहाडी कृषक क कठोर चिन्ता और कठिन जीवन की शुष्कता म दूर ले जान वाले ये लोक-नत्य उस प्रकृति क सुन्दर और सलौने रूप म हलात हैं।

प्राचीन काल से हमारे देश म कला एक पवित्र व्यवसाय समझा जाता रहा है। इसीलिए भारत की प्रत्यक कलाकृति पर आध्यात्मिकता की छाप रही है। अतीत म भारत म कला स व जातीय अनुभव की अभिव्यक्ति, जातीय क्रिया

कलापो का प्रकाश और राष्ट्रीय, धार्मिक एव भावनात्मक महत्त्वाकाक्षाओ की प्रतिमूर्ति रही है। यह अपेक्षा वतमान और भविष्य म भी जा सकती है, परन्तु आवश्यकता है तो केवल आत्म-समपण की भावना त्याग तपस्या और सतत साधना की। डा० श्याम परमार के अनुसार लोक-नृत्य और सगीत एस माध्यम हैं जो आदिवासी के निज मन को रगीन बनात हैं। कालान्तर मे वास्तविक गुण और प्रकृति आकाक्षाए इन्ही कलारूपो म समाहित होकर जातीय अभिव्यक्ति म ढलती हैं।

कला और सौन्दय का चोला-दामन का साथ है। जसे सागर म लहरें वायु का सम्पक पाकर लहराती हैं, वैसे ही प्रकृति मे प्राप्त अनुभवा की सहायता से लोक-कला का विकास होता है। उदाहरण के लिए जब मनुष्य ने हवा म पेड़-पौधो को हिलते और इठलाते देखा तो वह भी आनन्द विभोर होकर अपन शरीर का उसी प्रकार हिलाने डुलाने लगा। हिलाने डुलान से इस क्रिया ने धीरे धीर नाच का रूप धारण कर लिया और समय बीतने पर हम उसे लोक-नत्य कहने लगे। चाहे मनुष्य हो चाहे पशु पक्षी और चाहे लता बेलिया आनन्द के क्षणो म सभी के तन मन थिरकन लगत हैं। जो नत्य जन मन को आनन्द दे सारा लोक मानस जिसे देखकर खिल उठे उसे लोक-नत्य क अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है।

जहा लोक नत्य का उद्देश्य अपनी हार्दिक प्रसन्नता का प्रकट करना है वहा शास्त्रीय नत्य उद्देश्य का जनता के सामन प्रदशन करना भी है और लोगो को अपनी कला का परिचय देना भी। यही कारण है कि शास्त्रीय नत्य म लोक-नत्य की स्वाभाविकता और सरलता नही रहती। उसकी मुद्राओ और भाव भगिमाओ म बनावट और कृत्रिमता होती है। उनम ताल और लय का बडा बधन होता है। अतएव लोक नत्य लोक-कला का प्रतिबिम्ब होता है, जिसम लोक जीवन के महत्वपूण अग कला, सस्कृति, रीति रिवाज, सामाजिक स्थिति आदि का सुन्दर परिचय मिलता है।

भारतीय लोक-नृत्य

बिना तु नृत्यशास्त्रेण चित्रसूत्रम सुदुर्विदम।

—ऋषि मारकण्डेय

लोक-नृत्य लोक-कला का ही विशिष्ट रूप है जिसमे ललित-कलाओ के अनेक रूप समाहित हैं। लोक-नृत्य एव लोक-सगीत का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इसी प्रकार लोक-नृत्य मे लोक नाट्य सगीत-काव्य चित्रकारी एव वास्तुकला का भी

भारतीय नृत्य

मम्मिश्रण है। इसी मे भारतीय सस्कृति की सुन्दरता-समन्वय, लय ताल, स्वर माधुर्य व सौन्दय-बोध चेतना आज तक मिलती रही है और सबसे अधिक अनुनादी अभिव्यक्ति नत्य-कला द्वारा हुई है।

शारीरिक लय प्रधान क्रियाओ के साथ आनन्द एव सौन्दय की अभिव्यक्ति जिस सामूहिक रूप से होती है उसे लोक-नत्य कहते हैं। लोक कला परम्परा का यह रूप लोक-नत्य मानव जाति के आविर्भाव के साथ ही प्रत्येक देश मे किसी न किसी रूप म विद्यमान रहा है। नत्य और सगीत विश्व की आदिम कलाए है। इसमे किसका विकास पहले हुआ, यह लिखित इतिहास से परे है।

भारतीय लोक नृत्य के इतिहास का भौतिक निरूपण सभव नहीं है। कारण स्पष्ट है कि यह केवल राष्ट्र या जनता का इतिहास नही, अपितु कुछ और भी है। परिणामस्वरूप लोक-नत्य की भाषा कुछ स्पष्ट है, कुछ नही। समय और दूरी मनुष्य और प्रकृति की अभिव्यक्ति का माध्यम लोक-नत्य है। यही क्रम अज्ञात काल से जारी है। पुरुष और प्रकृति म नसर्गिक प्रवत्ति पीढियो से प्राप्त होती रही है। उसे भाषा और सगीत लय द्वारा श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति मिलती रही है। इस निहित विचार की बाह्य अभिव्यक्ति मानव इतिहास मे है और नत्य कला का ताना-बाना भी। भारतीय धम एव दशन न केवल कोरे तक बौद्धिकता या कुछ नतिक नियमो पर ही आधारित है, बल्कि इसका नत्य के साथ गहरा सम्बन्ध है। विश्व के प्रथम नट शकर है जिनके विराट नत्य स विश्व की पच क्रियाओ का जन्म हुआ और सष्टि के ताल, स्वर का स्वरूप निर्दिष्ट हुआ है, एसा लोगो का विश्वास है।

जब वह मुण्डमाली, नीलकण्ठ अहिभूषण, त्रिलोचन भस्मविलिप्त देह, त्रिशूल डमरू धारण कर, अपनी जटाओ को उन्मुक्त करके नत्य करने लगते है, तब अकस्मात ही यह कहना पडता है —

महोपादाघातात व्रजति सहसा सशयपद
पदविष्णोर्भाम्यद्भुजपरिघरुग्णा ग्रहगणा
मुहर्धो दोस्थ्य यायादनिमत ताडित तटा

चरणो का आघात लगने से लगता है जस भूमण्डल कच्चे घडे की भाति टूट रहा है। उठ हुए करो के घेरे मे आकर तारामण्डल अस्त-व्यस्त होने लगता है जटाए उमडती हैं तो लगता है जसे भूमण्डल छिन्न भिन्न हुआ जा रहा है।

शिव के इस विराट-नत्य का पहाडी लोक गीत मे बडा ही विशद तथा सुदर वणन हुआ है। लोक गीत लम्बा है, परन्तु यहा उसकी कुछ पक्तिया उदधत कर रहा हूं।

भारतीय लोक-नृत्य

विना तु नृत्यशास्त्रेण चित्रसूत्रम सुदुर्विदम ।

—ऋषि मारकण्डेय

लोक-नृत्य लोक-कला का ही विशिष्ट रूप है जिसमे ललित कलाओ के अनेक रूप समाहित है। लोक-नृत्य एव लोक-सगीत का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इसी प्रकार लोक-नृत्य मे लोक नाट्य सगीत काव्य चित्रकारी एव वास्तुकला का भी

भारतीय नृत्य

सम्मिश्रण है। इसी म भारतीय सस्कृति की सुदरता-समन्वय लय, ताल, स्वर, माधुय व सौदय-बोध चेतना आज तक मिलती रही है और सबसे अधिक अनुनादी अभिव्यक्ति नत्य-कला द्वारा हुई है।

शारीरिक लय प्रधान क्रियाओ क साथ आनद एव सौदय की अभिव्यक्ति जिस सामूहिक रूप स होती है, उस लोक-नृत्य कहते हैं। लोक-कला परम्परा का यह रूप लोक-नृत्य मानव जाति के आविर्भाव के साथ ही प्रत्येक देश म किसी न किसी रूप म विद्यमान रहा है। नत्य और सगीत विश्व की आदिम कलाए हैं। इसमे किसका विकास पहले हुआ यह लिखित इतिहास स परे है।

भारतीय लोक नत्य के इतिहास का भौतिक निरूपण सभव नहा है। कारण स्पष्ट है कि यह केवल राष्ट्र या जनता का इतिहास नही, अपितु कुछ और भी है। परिणामस्वरूप लोक-नत्य की भाषा कुछ स्पष्ट है कुछ नही। समय और दूरी, मनुष्य और प्रकृति की अभिव्यक्ति का माध्यम लोक-नत्य है। यही क्रम अज्ञात काल स जारी है। पुरुष और प्रकृति म नर्सागक प्रवत्ति पीढियो से प्राप्त होती रही है। उस भाषा और सगीत लय द्वारा श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति मिलती रही है। इस निहित विचार की वाह्य अभिव्यक्ति मानव इतिहास म है और नत्य-कला का ताना-बाना भी। भारतीय धम एव दशन न केवल कोरे तक बौद्धिकता या कुछ नतिक नियमो पर ही आधारित है बल्कि इसका नत्य के साथ गहरा सम्बध है। विश्व के प्रथम नट शकर हैं जिनके विराट नत्य मे विश्व की पच क्रियाओ का जम हुआ और सृष्टि के ताल स्वर का स्वरूप निर्दिष्ट हुआ है, ऐसा लोगो का विश्वास है।

जब वह मुण्डमाली, नीलकण्ठ अहिभूषण, त्रिलोचन, भस्माविलिप्त देह, त्रिशूल, डमरू धारण कर अपनी जटाओ को उमुक्त करके नत्य करन लगत हैं, तब अकस्मात ही यह कहना पडता है —

> महीपादाघाताद व्रजति सहसा सशयपद
> पदविष्णोर्भ्राम्यदभुजपरिघरुग्णा ग्रहगणा
> मुहूर्धो दोस्थ्य यायादनिमत ताडित तटा

चरणो का आघात लगने से लगता है, जसे भूमण्डल कच्चे घडे की भाति टूट रहा है। उठ हुए करो के घेरे म आकर तारामण्डल अस्त-व्यस्त होने लगता है जटाए उमडती हैं तो लगता है जसे भूमण्डल छिन भिन हुआ जा रहा है।

शिव के इस विराट-नत्य का पहाडी लोक गीत म वडा ही विशद तथा सुदर वणन हुआ है। लोक गीत लम्बा है, परन्तु यहा उसकी कुछ पक्तिया उदधत कर रहा हूं।

इशर नाचो अग-अग मोडे
सूल नाच लाधरो नर्चाडे
पर नाचो पताली रानी
डिन्ड नाचो ढनेसरा रानी
जानू नाचो जानका देवी
हीय नाचो हिडिम्बा देवी
गले नाचो ए रुण्ड माला
साथी नाचो ए सरपो काला
कान नाचो मुदरो वाले
शिर नाचो ए जटा वाले
मुकट नाचो गागो रो पानी
वावी नाचो पावती रानी
हाथ नाचो दग्ध तीरो
दावी नाचो हनुमन्त बीरो
ईशर नाचो अक्लि ऐ अक्ला
सग नाचो नौ लख चेला

भावार्थ—शिव अग अग मोड कर नाच रहे है
धीर नाचो शिव धरती न तोड़ देना
परो म पताल की रानी नाच रही है
घुटनो म ढनेसरा देवी नाच रही है
जानू म जानकी दवी नाच रही है
हृदय म हिडिम्बा देवी नाच रही है
गले म रुण्ड माला नाच रही है
माथ म काले साप नाच रहे हैं
कानो म मुन्दर नाच रह है
सिर पर वाली जटायें नाच रही है
मुकुट पर गगा मया का पानी नाच रहा है।
बायें ओर देवी पावती नाच रही हैं
हाथ म दग्ध तीर नाच रहे हैं
दायें हनुमन्त बीर नाच रह हैं
शिव अकेले ही नाच रह हैं
साथ म नौ लाख चेले नाच रहे हैं
शिव आनन्द विभोर होकर नाच रहे हैं।

इसम कोई सदेह नही है कि भारतीय नत्य का आदि रूप दिय ही रहा है वेदो म भी नत्य का उल्लेख मिलता है। जसे नत्य मानो अमत है (ऋ० 5 33 6) हिंदू देवी दवता शिव का नटराज रूप उनकी जीवन सहचरी पावती श्रीकृष्ण और गोपियो का सम्बन्ध प्राय इस कला क साथ जोडा जाता है। प्राचीन काल से लेकर लोक नत्य समाज के सभी वर्गो के जीवन का अग रहा है। प्राचीन भारतीय इतिहास एव साहित्य म अनेक उदाहरण मिलत है जिनसे यह प्रकट होता है कि नत्य राजघरानो म प्रिय रहा और राज परिवारा की राजकुमारिया इसे सीखती थी।

महाभारत के अनुसार राजा विराट की राजकुमारी उत्तरा ने ब्रहनला के रूप म अजुन स नत्य कला सीखी। दक्षिणी भारत के अनक प्रसिद्ध मन्दिरा क पुजारी इस कला म दक्ष थे। अय कलाओ की तरह नत्य-कला भी प्राचीनकाल से लेकर अब तक पनपी और विकसित हुई। इसका उदाहरण भरत मुनि द्वारा रचित नाटय शास्त्र है जिसके द्वारा न केवल नाटय-कला बल्कि सगीत कविता, वास्तुकला, नत्यकला और सौदय शास्त्र का भी प्रतिपादन किया गया है। अभिनय दपण और धनजय का दशरूपक अनय प्रसिद्ध ग्रन्थ है। समय समय पर कला क्षेत्र म अनक उतार चढाव आए और विदेशी आक्रमणा के साथ-साथ भारतीय नत्य-कला दक्षिण मे मन्दिर की देवदासियो तक सीमित हो गइ और उत्तर भारत म कुछ व्यावसायिक वग तक सीमित रह गई। राजदरबारा क समथन के अभाव म तथा सामाजिक रूढिया के कारण यह कला निम्न वग तक सीमित हो गई और आर्थिक कारणा स व लोग चरित्रहीन जीवन व्यतीत करने लग। उदाहरण के लिए हिमाचल प्रदेश मे नृत्य कला व्यावसायिक निम्न वग लोक-वादक—तूरी, ढाकी, बाजगी तक सीमित हो गई। इस वग की स्त्रिया देवी-देवता के ग्रामो म जाकर प्राय चत, बसाख श्रावण सक्राति और अय त्योहारा और उत्सवो पर लोक नत्या का प्रदशन करती थी और ग्रामीण लाग उनक साथ भद्द मजाक भी कर बठते थे। एसी परिस्थितियो म यह कला भारत क अय क्षेत्रा मे भी गुजरी है।

परन्तु स्वतन्त्रता क उपरान्त लाक जीवन की इस महत्त्वपूण थाती को सुरक्षित रखने और पुनजागरण की ओर ध्यान दिया जान लगा है। गणतन्त्र दिवस पर दिल्ली म प्रत्यक क्षत्र के लोक-नृत्य प्रस्तुत करन की प्रथा प्रशसनीय है। इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश सरकार तथा कलाकारो ने कुछ सगठन स्थापित कर लोक-नत्यों को प्रोत्साहन देने का सद्प्रयत्न किया है। इस सदभ म श्री जवाहर लाल नेहरू क विचार उल्लखनीय हैं 'यदि मुझस कोई पूछ कि भारत की प्राचीन सस्कृति और उसकी जनता के स्फूर्तिपूण जीवन और कला प्रेम का सबस सुदर

चित्रण वहा होता है तो मैं कहूगा कि हमारे लोक नत्यो म। मै चाहता हू कि भारत की यह प्राचीन थाती अपने प्राचीन स्वच्छ रूप म न केवल जीवित ही रहे, वरन निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर हो जिससे वह साधारण जनता का स्वस्थ मनोरजन करती हुई उनम नई उमग नया जोश तथा नई चेतना भर सके।'
समय क अनुसार भारतीय लोक नत्य म बहुत कम परिवतन हुए है। उनकी आतरिक गठन वही रही है।

ऐतिहासिक झलक

मैं देवताओ के सक्डों युगों मे तुम्हे हिमाचल की गौरव गाथा नहीं बखान सकता। जसे ओसकणों को प्रात सूय सुखा देता है, वसे ही हिमाचल को देखकर मानव के पाप धुल जाते ह।

—स्कद पुराण

पूव आय काल एव आदिकाल

हिमाचल प्रदेश की लोक-परम्परा और इतिहास उतना ही पुराना है जितनी पुरानी मानव सभ्यता। हिमाचल प्रदेश नि सन्देह आदि मानव का स्थान रहा है। इस प्रदेश का इतिहास असख्य जातिया, उपजातियो के उदय, विलय, सघप, शाति, सिकुडन विस्तार एव राज्यो के उत्थान पतन से ओत प्रोत रहा है। इन पहाडो पर बसने वाले लोग भारत के मदानी भागो की महत्त्वपूण घटनाओ म उतना ही योगदान देते रहे है जितना अय क्षेत्र के लोगो ने दिया। ऐसे उतार-चढ़ाव और विविध जाति तत्त्वो के समावेश का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ, कि प्रत्येक जाति की धार्मिक भावनाओ एव परम्पराओ का कोई न-कोई अश इस पहाडी क्षेत्र के लोक जीवन म अवश्य मिल जाता है।

इस पवतीय क्षेत्र मे बसने वाली अनेक जातिया म किन्नर, किरात, यक्ष गधव, नाग कोल, खश एव अय अभिजातिया के अवशेष अब भी विद्यमान हैं। इसलिए हिमाचल प्रदेश के प्रारभिक युग को जनजातियो का युग कहा जाये तो ठीक होगा। ये जनजातीय परम्पराए किसी-न किसी रूप म आज भी विद्यमान हैं। ऋग्वेद म जिन नदिया का वणन है, उनमे यमुना, सतलज, व्यास, चिनाव, रावी इस प्रदेश से होकर अब भी बहती हैं।

पौराणिक काल से जुडी हुई यहा की अनेक परपराए एव स्थान आज भी जीवित है। मनु राजा शाम्बर दिवोदास का युद्ध, जमदग्नि, परशुराम, मा रेणुका, वशिष्ठ विदुर और ताम्री, भीम और हिडम्बा की मिलनस्थली, मनाली महाभारत युद्ध म भाग लेने वाले त्रिगत राजा सुशमचद कटोच कमरू नाग, पाडवो से जुडा शिमला जनपद के हाटेश्वरी और हाटकोटी, हनोल म महासू, मडी का

पागणा कुल्लू के निरमड कागडा दुग म भीम स जुडा भीमकोट इत्यादि अनक पुण्यस्थल आज भी विद्यमान हैं जो वतमान के मुह म झाक्कर अपनी प्राचीनता का परिचय दे रहे हैं। पौराणिक काल स हिमाचल प्रदेश क सकडा दवी-देवताओं की पूजा एव लोकनत्य परपरायें भी जुडी हैं।

भारत क अन्य राज्या की तरह हिमाचल प्रदश क त्रिगत (कागडा) कुल्लूत (कुल्लू) कलिन्द (सिरमौर) युगन्धर (विलासपुर नालागढ) कुशट्र गन्धिका (चम्बा) एव आदुम्बर (पठानकोट) सबसे पुराने सुव्यवस्थित राज्या म से थे। वतमान हिमाचल प्रदेश का शेष क्षत्र सम्भवत इन्ही राज्यो का भाग था। समय पाकर धीरे धीरे ये राज्य छोट छोटे राज्यो मे छिन्न भिन्न होकर राणाओ ठाकुरो और मावियो म बट गए। बाहर से आकर अनेक शक्तिशाली राजाओ ने इन छोटे छोटे राणाओ को परास्त कर अपने राज्यो म मिला लिया, जम सिरमौर क्योथल, मडी कागडा, विलासपुर के प्राचीन इतिहास स विदित होता है।

मैं ज० हचिसन एव वोगल के इस मत से सहमत हू कि इन पहाडी राज्यो का इतिहास लगभग एक अनवरत सघष का इतिहास है। जब कोई शक्तिशाली शासक सत्ता प्राप्त करता था तो वडे राज्य अपने छोटे पडोसी राज्यो को अपने म मिला लेत थ। परन्तु यह छोटे राज्य उपयुक्त समय मिलने पर अपन को आजाद घोषित कर देत थे।

इन प्रसिद्ध राज्यो म चम्बा की नीव 550 ई० के लगभग कहलूर राज्य 697 ई० म मडी और सुकेत की स्थापना 765 ई० मे और सिरमौर की 1139 ई० म लिखित इतिहास म भी उपलब्ध है। इन पहाडी राजाओ ने लोक जीवन को समद्ध करने के लिए अनेक मदिर बनवाय तथा असख्य मेले एव त्यौहारो की परपराओ की नीव भी डाली। दीघकाल तक इन पहाडी राज्यो म कोई उल्लेखनीय परिवतन नही हुए। लकिन बाहरी आक्रमणो क फलस्वरूप आतरिक जीवन म परिवतन आना स्वाभाविक था।

गुप्तकाल और हषवधन की मत्यु तक सारे पहाडी क्षेत्र म नया जीवन अगडाइया लेने लगा था। 1001 ई० से महमूद गजनवी क भारत पर आक्रमण से इन पहाडी राज्यो म भी उथल पुथल शुरू हुई। 1009 ई० म उसने कागडा के प्रसिद्ध दुग और मदिर पर आक्रमण किया। इसी दौरान मे अनेक राजपूत सामन्तो ने हिमाचल प्रदेश के अनेक क्षेत्रो पर कब्जा कर अनेक राज्य स्थापित कर लिए। इनम क्योथल बघाट, कुठाड कुनिहार, भज्जी, धामी महलोग, कोटी, मागल बेजा, भरोली बाघल, जुब्बल सारी, रावीगढ बलसन, रतेश घूड मघान थयोग, कुमारसन करागड, खनेठी, कोटखाई, कोटगढ दरकोटी देलठ, थराच ढाडी शागरी डोडरा क्वार रामपुर बुशहर गुलेर नूरपुर जसवान दातारपुर डाढा और नालागढ मडी, सुकेत, लाहौल स्पिति के नाम उल्लेखनीय

हैं। जहा अनेक पहाडी शक्तिशाली सामन्त आपसी फूट स परस्पर सत्ता का विस्तार करन पर तुले रहत थे, वहा अनेक मदिरा, मूर्तिकला, वास्तुकला एव अन्य कलाआ का प्रारभिक काल भी यही युग था।

मुस्लिम आक्रमण और मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ इस पहाडी क्षत्र म नय युग का सूत्रपात हुआ। मुगल साम्राज्य का राजनतिक एव सामाजिक प्रभाव इस क्षत्र के लोक-जीवन पर भी पडा। सिरमौर, शिमला जनपद क देव शिरगुल और देव डूम का सघर्ष लोकगाथाआ म मुगला से जोडा जाता है। इसी तरह कुल्लू, कागडा, सिरमौर और चम्बा के राजा मुगलो स कभी जूझत रहे, तभी उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

इसके बाद अग्रेजा के आगमन क बाद सिख सेना और गोरखा क साथ पहाडी राजाओ की आपसी फूट के कारण अनेक युद्ध हुए। युद्धो की यह आख मिचौनी तब तक चलती रही जब तक अग्रेज साम्राज्य ने पूरी तरह इस प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित नही कर लिया। हिमाचल प्रदश के प्रसिद्ध राजाओ म चम्बा के राजा साहिल वर्मन, मेरुवमन, मडी क वीरसेन और सिद्धसेन, सुकेत के मदन सेन, रामपुर बुशहर के राजा केहरीसिह सिरमौर के राजा कमप्रकाश एव कागडा क राजा ससारचद्र के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके राज्यकाल मे कला एव सस्कृति का काफी विकास हुआ।

ह्यूनसाग के भारत सम्बधित वत्तान्त मे भी हिमाचल के कागडा, कुल्लू और लाहौल स्पिति क राज्या का वणन मिलता है। उसक अनुसार महाराज हषवधन ने कुल्लू और कागडा को अपने राज्य मे मिलाया।

हषवधन की मत्यु के बाद यारकद के कीर कबील ने राजा लक्ष्मीवर्मन के राज्य पर आक्रमण किया। इसी तरह लाहौल स्पिति पर तिब्बत की सेनाओ न आक्रमण किया। इन आक्रमणा का प्रभाव लूट और तबाही तक ही सीमित रहा।

हिमाचल के इन पहाडी राजाआ ने प्रशिक्षित सेनाए रखी। युद्ध म राजा ही सेना का नेतत्व करता था। राजा की मत्यु पर ही सेना की पराजय समझी जाती थी। ई० 500 स 1000 ई० तक का समय हिमाचल की कला और सस्कृति के उत्कष का काल था। शासक और प्रजा की धम पर गहरी आस्था थी। इस काल मे हिमाचल के विभिन्न भागा म अनेक मन्दिरो का निर्माण हुआ। चम्बा के राजा मेरुवमन और साहिलवमन के राज्यकाल मे सुन्दर मन्दिरो का निर्माण हुआ। इसी काल म किन्नौर और लाहौल स्पिति क्षेत्र म बौद्ध धम का प्रचार हुआ। ई० 1000 क बाद मुसलमानो मुगलो, अग्रेजा फ्रांसीसियो और पुतगालियो ने भारत के अनेक भागो म अपनी सत्ता का विस्तार करने के अनेक प्रयत्न किए। देहली के सुलतानो या सतलुज के पहाडी पश्चिमी राज्या पर आधिपत्य रहा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सुलतानो और मुगलो के अनेक

सम्बंधियों ने विद्रोह में असफलता के बाद हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी राजाओं की शरण ली। सरदार मुहम्मद ने जिसने रज़िया सुलताना के विरुद्ध विद्रोह किया था, सिरमौर के महाराजा की शरण ली। इसी तरह सरदार कुटलग खां जिसने मुहम्मदशाह प्रथम के विरुद्ध विद्रोह किया था, सिरमौर राज्य में भागकर जान बचाई। 1365 ई० में फिरोजशाह तुगलक ने नगरकोट (कांगड़ा) पर आक्रमण किया। इस आक्रमण के दौरान उसने कांगड़ा और ज्वालामुखी के मंदिरों को लूटा और 300 के लगभग संस्कृत की पुस्तकें ले गया जिन्हें बाद में उसने फारसी में अनुवादित करवाया।

1398 99 में तैमूर ने सिरमौर राज्य को लूटा और कांगड़ा पर आक्रमण की तैयारी करने लगा परन्तु कांगड़ा के राजा की शक्तिशाली सेना के डर से उसने आक्रमण नहीं किया।

मुगलों के साथ इन पहाड़ी राजाओं के सम्बन्ध अकबर के राज्यकाल में हुए। अकबर इन पहाड़ी राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाना चाहता था। इसलिए उसने टोडरमल को कांगड़ा भेजा। फलस्वरूप तत्कालीन कांगड़ा के महाराजा धर्मचन्द ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार किया। 1620 ई० में जहांगीर ने कांगड़ा को अपने अधीन किया।

17वीं शताब्दी में बुशहर राज्य के प्रसिद्ध राजा केहरीसिंह ने कंगराला सारी, कोटगढ़ देलठ और कुमारसेन पर अपना आधिपत्य जमाया। उसने मंडी सुकेत, सिरमौर और गढ़वाल की ओर भी कदम बढ़ाए। 1681 83 में किन्नौर का ऊपरी भाग तिब्बत-लद्दाख युद्ध में उसने प्राप्त किया।

मुसलमानों के राज्यकाल में सुरक्षा की भावना से अनेक दुर्गों का निर्माण हुआ। जिनमें कमलाह (मंडी) मदनकोट (कुल्लू) चवाड़ी (सुकेत) हमीरपुर स्यूरमरयू (बिलासपुर), रामशहर (नालागढ़) के दुर्गों का निर्माण हुआ।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी राजाओं में कांगड़ा के राजा संसारचन्द्र ने एक कुशल योद्धा और शासक के रूप में ख्याति प्राप्त की। 1775 ई० में सिंहासनारूढ़ होने के बाद मुगलों और सिक्खों के संघर्ष के फलस्वरूप कांगड़ा के दुर्ग पर 1786 में उसका अधिकार हो गया। इसके साथ साथ उसने मंडी, सुकेत कहलूर और चम्बा पर अपना आधिपत्य जमाया। राजा संसारचन्द्र की बढ़ती शक्ति से घबराकर अनेक पहाड़ी राजाओं ने कांगड़ा के विरुद्ध युद्ध करने के लिए गोरखा की सहायता प्राप्त की। फलतः गोरखों ने कांगड़ा पर आक्रमण किया और संसारचन्द्र ने जो राज्य जीते थे वे पुनः स्वतन्त्र हो गये। तीन वर्ष तक गोरखों ने कांगड़ा में तबाही मचाई। मजबूर होकर राजा संसारचन्द्र को महाराजा रणजीत सिंह की सहायता के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। महाराजा रणजीत सिंह ने इस शर्त पर सहायता दी कि

वह सिक्खो को सहायता के बदले कागडा दुग और 66 गाव देगा। महाराजा ससारचन्द्र ने गोरखो मे छुटकारा मिलन पर अपना वायदा पूरा किया। कागडा की दिशा से पराजित होकर गोरखो ने बुशहर राज्य पर आक्रमण किया। कमरू के समीप गोरखा और किन्नरो का युद्ध हुआ, जिसम गोरखा सना पराजित हुई।

1842 म जनरल जोरावर सिंह ने लाहौल स्पिति अपन अधीन कर लिया और यहा का प्रशासन अपने विश्वस्त सहायक रहीम खा को सौपा। रहीम खा एक निदयी और क्रूर शासक था। उसन बौद्ध मठो और हिंदू मदिरो को नष्ट किया। यहा के लोगा न भागकर बुशहर मे शरण ली। आखिरकार रहीम खा मारा गया।

1845 म सिक्खो क साथ युद्ध मे लाहौल स्पिति अग्रेजो को मिला, जिसे अग्रेजो ने 1847 मे कागडा जिला का भाग बनाया। इसी दौरान अग्रेजो ने हिमाचल प्रदेश पर अपना आधिपत्य बढाया। गोरखो को पहाडो से भगाकर अग्रेजो न कोटखाई, *कोटगढ और कुल्लू को अपने साम्राज्य मे मिलाया। अपना* राजनीतिक प्रतिनिधि इन पहाडी राज्यो की दख रेख के लिए नियुक्त किए। इन पहाडी राजाओ को अपनी सेनायें रखने का अधिकार भी धीरे धीरे छीन लिया और ये ब्रिटिश सरकार के कृपा भाजन बन।

साधारण जनता के कल्याण क लिए जसे पिछले एक हजार स भी अधिक वर्षों से कुछ नही हुआ था, ब्रिटिश काल म भी कुछ नही हुआ। ब्रिटिश सरकार ने इन सभी पहाडी राज्यो म परस्पर कटुता भेदभाव और ईर्ष्या बनाये रखी। भौगोलिक, भाषाई, सामाजिक सास्कृतिक, धार्मिक, पारस्परिक एकता होते हुए भी उन्हे विभाजित रखने की जान-बूझकर कोशिश जारी रखी।

परन्तु युगो से रौंदी गई जन शक्ति हाथ पर-हाथ धरे बठी रही हो एसी बात नही। सामन्ती यातनाओ का बाध यदा कदा कही कही पूरे वग से फूट पडता था।

1825 म कोटखाई, कोटगढ की जनता ने अपने निरकुश शासक क विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मजबूर होकर मजर कनेडी एक सनिक टुकडी लकर कोट खाई गया और वहा क राणा को पेंशन देकर यह क्षेत्र ब्रिटिश राज्य मे मिला लिया। 1859 मे बुशहर मे विद्रोह हो गया और 1876 मे सुकेत की जनता वजीर नरोत्तम के विरुद्ध भडक उठी। मडी म शोभाराम के नतत्व म विद्रोह की ज्वाला भडकी। 1876 मे नालागढ के लोगो ने वजीर गुलाम कादिर खा के विरुद्ध जमकर लडाई लडी। 1883 और 1930 मे बिलासपुर के सामन्ती शासन के विरुद्ध बिलासपुर की जनता ने आवाज उठाई। 1905 म बाघल के लोगो ने भी राजा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इसी तरह की छुट पुट घटनाओ द्वारा हिमाचल प्रदेश की सभी छोटी-बडी रियासतो म आनवदवाद के विरुद्ध

डॉ० परमार को आज तक हिमाचल निर्माता के रूप में याद किया जाता है, क्योंकि उनके नेतृत्व में हिमाचल प्रदेश ने आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में ही नहीं राजनीतिक क्षेत्र में भी राष्ट्र में बराबरी का दर्जा पाया।

1976 ई० डॉ० यशवंतसिंह परमार के त्यागपत्र के फलस्वरूप ठा० रामलाल ने मुख्यमन्त्री का पदभार संभाला। ठाकुर रामलाल 1976 77 और 1980 83 में हिमाचल प्रदेश के मुख्यमन्त्री रहे।

1977 80 में भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में नया परिवर्तन आया। कांग्रेस के स्थान पर केन्द्र में जनता दल की सरकार बनी। फलत हिमाचल प्रदेश में इस दौरान श्री शांताकुमार जनता दल सरकार के नेता बने। परन्तु केन्द्रीय स्तर पर जनता दल के विघटन के फलस्वरूप हिमाचल प्रदेश में फिर से चुनाव हुए। ठाकुर रामलाल फिर से मुख्यमन्त्री बने।

कांग्रेस के आन्तरिक परिवर्तन के फलस्वरूप हिमाचल प्रदेश के कांग्रेस दल के नेतृत्व में परिवर्तन आया। राजा वीरभद्रसिंह को कांग्रेस दल का नेता चुना गया। 1983 से श्री वीरभद्रसिंह प्रदेश के मुख्यमन्त्री के पद पर कायम हैं। इस अवधि में प्रदेश में एक मौन और शांतिपूर्ण सामाजिक और आर्थिक क्रांति का दौर दौरा रहा है। आज इस विकास के मामले में देश के पहाड़ी क्षेत्रों में अग्रणी राज्य माना जाता है।

वास्तव में प्रदेश की तस्वीर में नये रंग भरने का श्रेय यदि किसी को जाता है तो वह यहां के सरल और परिश्रमी लोगों को जाता है जिन्होंने अपनी मेहनत और लगन से यह सिद्ध कर दिखाया है कि गरीब रहना पहाड़ों का मुकद्दर नहीं।

)

धार्मिक एव सामाजिक परम्पराए

"सस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओ की सर्वोत्तम परिणति हे।"
—हजारीप्रसाद द्विवदी

हिमाचल के लोग परस्पर साझे धम, परम्परा, सस्कृति, रीति रिवाज रहन सहन और सामाजिक गठन स सम्बद्ध है। यहा के 96 प्रतिशत स भी अधिक लोग हिंदू धर्मावलम्बी हैं। इस प्रदेश के 6,000 स भी अधिक मदिरो म स्थापित देवी देवताओ की नित्य पूजा होती है। हिमाचल मे ऐसा घर या ग्राम दीपक लकर खोजने म भी न मिल सकेगा, जहा किसी देवी-देवता का पवित्र स्थान न हो, नही तो लोग समीप की थाडी, वक्ष या ऊचे स्थान पर कुछ पत्थर रख कर, वहा ध्वजा लाल या केसरिया कपडा लगाकर किसी देवी देवता की पूजा करत हैं।

हिमाचलवासियो का लोक-जीवन, धम की सुन्ढ नीव पर ढला है। धम उनक जीवन का बल और सम्बल है। धम यहा के लोक जीवन म पष्ठ भूमि का काम देता है। यहा के लोक गीतो लोककथाओ लाकोक्तिया, लोकनत्य और दनिक आचरण—सभी म धम का कोई-न कोई तत्त्व अवश्य उपलब्ध होता है। बात बात म ग्रामीण जन भाग्य व ईश्वर इच्छा और कमवाद की दुहाई देत हैं। ससार म देश म, हमारे चारो ओर जो बुराइया हैं विपमताए हैं उनका मूल कारण वतमान या पिछले जन्म के कर्मों का फल ही बतलाया जाता है। कम और भाग्य शब्द प्राय एक ही अथ के द्योतक समझे जाते हैं।

दवी-देवताओ मे ग्रामीण जनता की प्रगाढ श्रद्धा है। कोई मनोकामना पूरी करन के लिए कोई सकट सामने आ गया हो या कोई विशप खुशी हा ऐस मौका पर दवी-देवताओ के नाम पर विशेप पूजा और उत्सव होत हैं। सामूहिक रूप स जितने पुराने मल या त्योहार जहा-जहा लगन हैं, उनका सम्बध भी किसी-न किसी देवी देवता से अवश्य जुडा रहता है।

उत्सव वाले दिन देवी-देवता को सुदर पालकी म बिठाकर नरसिंहा, सोन या चादी की छडी, ध्वजा ढोल, नगाडा, शहनाई ताल, करताल और कभी-कभा नतको क दल सहित पूजा के स्थान पर जुलूस की शक्ल म ल जाया जाता है।

देवी-देवता को पवित्र स्थान पर बठाकर ग्रामीण लोक-वाद्यो और लोक गीतो की ताल पर लोक-नृत्य करते हैं। रग बिरगे परिधान पहन दूर दूर से स्त्री पुरुष आकर ऐसे अवसरो की शोभा बढाते हैं। कही सामूहिक नृत्या से कही ठोडे का खेल कही झूला कही लामण से कहा मिठाइया के आदान प्रदान से लोग जी भरकर मनोरजन करते हैं।

ईश्वर या किसी देवता या देवी का कृपाभाजन बनने के लिए या किसी मनोरथ सिद्धि के लिए स्त्रिया और पुरुष समय समय पर विभिन्न व्रतो का सम्पादन करते हैं। सप्ताह म एक बार या वष के विभिन्न मासो म कार्यों की सिद्धि के लिए व्रत करते हैं। समीप के मदिर म या घर म किसी पवित्र स्थान चित्र या प्रतिमा के सामन पूजा कर चद्रमा या सूय की पूजा भी करते हैं।

जन साधारण अनक प्राचीन रूढियो परम्पराओ रीति रिवाजा तथा विश्वासो पर अमिट आस्था रखते है। सच तो यह है कि उनका समस्त जीवन धम रूढियो और अधविश्वासो से घिरा हुआ है। इसी प्रकार यहा के लोक गीतो और कहावतो म सतीत्व सदाचार सत्य और विश्वास के प्रति जो प्रगाढ दृढता की झलक दिखाई पडती है उसकी सतत प्रेरणा धम से ही मिली है।

कई जगह गाय का दूध बिना देवता के बच्चो को नही पिलाया जा सकता। इसी प्रकार देवता के सामन नग सिर जाना झूठ बोलना वर्जित है और जो वायदा किया हो उसे अवश्य पूरा करना होता है नहा तो देवता का श्राप लगता है, जिससे बचना बडा असभव है।

प्रत्येक देवी-देवता का काम सुचारु रूप से चलाने के लिए सम्बधित ग्राम वासी एक कारदार चुनते है जो कई स्थानो पर प्राय परम्परागत ही होते हैं। जब कोई सामूहिक या व्यक्तिगत निणय देवता से मागना हो तो सारे ग्रामीणो की एक सभा बुलाई जाती है। देवी या देवता अपनी देववाणी अपने चुन हुए माध्यम द्वारा अपन श्रद्धालुओ पर प्रकट करता है। कभी-कभी देवता अत्यत रुष्ट भी हो जाता है और कुछ नही कहता। ऐसी परिस्थिति म ग्रामवासी एव श्रद्धालु देवता की मिन्नतें भी करते है। माध्यम द्वारा ही देवता आज्ञाए प्रसन्नता या रोष, उपदेश या चेतावनी अपने श्रद्धालुओ पर प्रकट करता है।

मदिर या जिस स्थान पर देवी-देवता हो वहा तक कोई भी अपवित्र वस्तु ले जाना वर्जित है और हरिजन लोग भी देवता म अगाध श्रद्धा के कारण मदिर प्रवेश पर कोई जोर देना ठीक नही समझते। सूतक पातक म भी मदिर प्रवेश वर्जित है। इसका उल्लघन करने वाला दडित किया जाता है और मन्दिर की शुद्धि विशेष पूजा विधि स करना आवश्यक समझा जाता है।

हिमाचलवासी जिन देवी-देवताओ को पूज्य समझते हैं उन्हे मुख्यत चार श्रेणियो म विभक्त किया जा सकता है। एक शवशक्ति मतावलम्बी जसे भूतनाथ

महादेव भीमा काली, हाटेश्वरी और उनके अनेक गण तथा शक्ति के अनेक छोटे बड़े रूप द्वितीय श्रेणी मे विष्णुमतावलम्बी जसे ठाकुर, रघुनाथ, माधव, कृष्ण, राधा लक्ष्मी, हनुमान इत्यादि तीसरी श्रणी मे नाग-नागनी की पूजा और चौथी श्रेणी म वे देवी-देवता आत हैं जिन्हे सारे हिमाचलवासी ग्राम देवता के रूप मे पूजत हैं और दूर-दूर के गाव स भक्त यात्री उनक मदिरो मे चढावा चढान आते हैं। इसके अतिरिक्त हाटकोटी की देवी सराहन म भीमा काली, बिलासपुर म नयना देवी, मडी म भूतनाथ टारना, कमरू नाग कुल्लू म रघुनाथ, बिजली महादेव, हिडम्बा कागडा म व्रजेश्वरी, हमीरपुर म ज्वालामुखी, ऊना मे चितापुरणी सिरमौर म रेणुकादेवी चम्बा मे मणि महेश और त्रिलोकीनाथ किन्नौर म देवी चडिका, महेशू लाहौल स्पिति म अनक बौद्ध मदिरो के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

लाहौल स्पिति और किन्नौर म लामा लोग अपने भिक्षुवष म हाथ म प्राथना चक्र लिए प्राचीन बौद्ध मदिरो की यात्रा करत हुए प्राय मिल जात हैं। पुण्यधाम कलाश और कमरुगढ भी हिन्दुओ के पवित्र स्थान है।

हिमाचल प्रदेश के कुछ मदिर बाह्य शिल्पकला के कारण, कुछ मूर्तिकला भित्तिचित्र के कारण, कुछ देवी देवताओ सिद्धो योगियो और महात्माओ की शक्तियो के साथ जुडे हुए होने के कारण पवित्र समझे जात है। इन मन्दिरो के साथ हिमाचल प्रदेश के निवासियो को अगाध श्रद्धा, भक्ति, विश्वास परिश्रम और अनन्य प्रेम असीम मात्रा म जुड़ा हुआ है।

शिमला क्षेत्र के प्रसिद्ध देव मदिरो म जुब्बल म पिती देवी, हाटेश्वरी देवता शाडी (बनाड), चौपहल मे बाजट और श्रीगुल कोटखाई म देवता बन्द्रा चम्बी, क्यारी मे दुर्गा और लौंकडा, कुम्हारसेन मे देवता चतुमुख और कोटेश्वर, रामपुर म भीमाकाली जुनगा म दवता जुनगा और तारादेवी भज्जी शागरी म मूल पडोई ठयोग म महासू गिणडी कठान का डूम देवता और नाग देवता के मदिर युग युगो स जनता के धार्मिक और सास्कृतिक जीवन की धुरी बने हुए हैं।

मडी नगर म भगवान भूतनाथ माधव राव श्यामाकाली अर्द्धनारीश्वर इत्यादि के असख्य मदिर अपनी शिल्पकला, प्राचीनता और लोगो क धार्मिक जीवन का परिचय देत हैं। ऋषि पाराशर, देव कमरूनाग, माहुनाग इत्यादि के मदिर आज भी पहाडी मदिरो मे श्रेष्ठ गिने जात हैं।

मडी से 12 मील दूर रिवालसर झील और बौद्ध-मदिर बौद्धा, हिन्दुआ तथा सिखा के लिए समान पूज्य तीथ स्थान हैं। जहा बौद्ध और तिब्बती यात्रियो के लिए पद्मसभव की आत्मा विचरती है वहा हिन्दुओ के लिए यह स्थान लोमस ऋषि की तपोभूमि तथा भिक्षु और राजकुमारी की अन्यायपूर्ण हत्या के कारण उनकी विचरण-स्थली है। एसे ही कुछ लोगों का विश्वास है कि झील के नीचे नाग

देवता के भवन बने हैं और इस प्रकार इनका सम्बन्ध नागपूजा से जुड़ता है। सिख के दशमेश गुरु गोविन्दसिंह जी यहाँ पधारे थे और रिवालसर झील के किनारे तपस्या करते थे। इसी प्रकार मंडी में अनेक अन्य पवित्र स्थान हैं जैसे कमरूनाग, माहूनाग, भूतनाथ देव पाराशर इत्यादि।

सिरमौर में रेणुका अपने प्राकृतिक वैभव के लिए प्रसिद्ध है। कार्तिक एकादशी के दिन हजारों यात्रियों का समूह परशुराम मंदिर में विष्णु के अवतार परशुराम को श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते हुए निज श्रद्धा प्रकट करते हैं। पांवटा साहिब में सिखों का प्रसिद्ध ऐतिहासिक गुरुद्वारा है, जहाँ दशमेश गुरु गोविन्दसिंहजी ने तीन वर्ष व्यतीत किए। चूड़धार स्थित देवता श्रीगुल का मन्दिर भी जनता की धार्मिक वृत्ति का प्रतीक है। नाहन में जगन्नाथ और काली स्थान के मंदिर भी उल्लेखनीय हैं।

चम्बा में भी देवी-देवताओं के अनेक प्राचीन मन्दिर इस क्षेत्र के दुर्गम होने के कारण अब तक अपने प्राचीन रूप में विद्यमान हैं। अखण्ड चण्डी का महल, नगर के मध्य में मीलों से अपनी झलक दिखाता है। इस महल की उत्तर-पश्चिमी दिशा में एक ही पंक्ति में 6 प्राचीन मन्दिर 920 ई० से लेकर वर्तमान के युग में शोभित हैं। भरमौर से 18 मील की दूरी पर 13 000 फुट की ऊंचाई पर मणिमहेश की प्रसिद्ध झील है। यहां पर प्रतिवर्ष काश्मीर के अमरनाथ के समान हजारों यात्री भगवान शिव के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा प्रकट करते हैं। भगवान शिव की संगमरमर की प्रतिमा झील के एक किनारे पर स्थापित की गई है और इसके समीप ही 18 564 फीट ऊंचा पर्वत है। इस पर्वत का शिखर प्रायः धुंध और बादलों से घिरा रहता है और वह व्यक्ति अपने-आपको धन्य समझता है जो किसी पवित्र अवसर पर इस पुण्य शिखर के दर्शन कर ले। इसी तरह लक्षणा देवी भरमौर, शक्ति देवी छतराड़ी, काली मरकुला (उदयपुर), लक्ष्मी नारायण मंदिरों के नाम गिने जा सकते हैं।

लाहौल स्पिति में गफन देव और कलंग देवता के मंदिर, तथा तारडुंग और शशुर के बौद्ध मठ इस क्षेत्र के धार्मिक जीवन को प्रेरणा देते रहते हैं। चम्बा जिला में स्थित मरकुला देवी (प्राचीन नाम मरगुल या मारुल) का सुंदर और कलापूर्ण मंदिर है। तिब्बती बौद्ध यात्री इस मंदिर में स्थापित देवी को मरकुला न कह कर दोरजे फग्मो कहते हैं। इसी प्रकार चम्बा की प्राचीन राजधानी भरमौर में स्थित लक्षणा देवी का मंदिर तथा छतराड़ी में शक्ति देवी का मंदिर भी यहाँ की जनता के धार्मिक जीवन के प्रतीक हैं। इसी तरह पांगी क्षेत्र में मिंधल देवी का मंदिर है।

लाहुल की चन्द्रभागा नदी के स्रोत की ओर चम्बा से 90 मील की दूरी पर तुंदे ग्राम स्थित है जहां पर त्रिलोकीनाथ का मंदिर स्थित है। केवल साहसी या दिवाना भक्त ही इस कठिन यात्रा को पूरी कर सकता है। यद्यपि त्रिलोकीनाथ

मूलत बौद्ध तीर्थ है, परन्तु फिर भी हिन्दू लोग इस मंदिर को अगाध श्रद्धा से देखते हैं। बौद्धों के लिए मंदिर फगस्या चरणजय का मंदिर है। अन्य यात्रियों के लिए यह मंदिर तीनों लोकों के स्वामी त्रिलोकीनाथ का मंदिर है। तीन फुट ऊंची श्वेत पाषाण प्रतिमा पद्मासन स्थिति में बैठी दीखती है। छ बाहुओं में से एक दाहिनी भुजा आशीर्वाद की मुद्रा में और बायीं भुजा में एक कमल का पुष्प है। मुकुट पर असीम प्रकाशयुक्त महात्मा बुद्ध की प्रतिमा है। मंदिर में यदि कोई क्षति हो जाये, तो यह राज परिवार में किसी मृत्यु की भविष्यवाणी का द्योतक समझा जाता है। वर्ष में इस मन्दिर के सामने कई उत्सव होते हैं। भगवान त्रिलोकीनाथ के भक्त सैकड़ों की संख्या में आकर इस मेले की शोभा बढ़ाते है।

कुल्लु मनाली जहां अपने प्राकृतिक वैभव के लिए प्रसिद्ध है, वहां देवी देवताओं के छोटे-बड़े मंदिरों और उन पर आस्था रखने वाली जनता की आज के भौतिकवादी युग में भी कमी नहीं। इन अगणित असंख्य मंदिरों में से भगवान रघुनाथ बिजली महादेव, हिडम्बा देवी (सुगरी देवी) भलेली देवी, महेश्वर सुगरा, त्रिपुरा सुन्दरी देवी नगर, जमलू मलाणा त्रिजुगी नारायण दयार, देवी चुगेरसा चण्डदेवी मजनी देवी, अम्बिका, निमण्ड आदि ब्रह्मा खोखण, मनुमनाली जम मंदिर उल्लेखनीय हैं। इन मंदिरों में न केवल स्थानीय जनता अपितु पर्यटकों ने भी विशेष रुचि दिखाई है।

कांगड़ा का तो कहना ही क्या ! यह अपने ऐतिहासिक प्राचीन खण्डहरों, चित्रकला एवं हिन्दू मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है। समय समय पर मुसलमानों के आक्रमण और 1905 में भयानक भूकम्प के फलस्वरूप असीम तबाही के बाद भी अनेक ऐतिहासिक महत्त्व की यादगार आज भी उपलब्ध है। धर्मशाला से 22 मील की दूरी पर मसरूर स्थान पर चट्टान से निर्मित 15 मंदिर हैं जिन पर गुप्त कालीन भवन निर्माण कला की गहरी छाप स्पष्ट झलकती है। बैजनाथ में शिव का प्रसिद्ध मन्दिर लगभग 1000 वर्ष से भी पुराना है। बैजनाथ में वैसे तो 16 और मंदिर हैं जो प्राचीन है परन्तु यही मंदिर अधिक प्रसिद्ध है। कांगड़ा में इन्द्रेश्वर का छोटा मंदिर तथा भगवती व्रजेश्वरी का विशाल मंदिर, कांगड़ा दुर्ग के एक ओर भवन में स्थित है। इसी मन्दिर के साथ अनेक अन्य प्राचीन मंदिर हैं। वर्ष में दो बार अप्रैल और अक्टूबर में इस मंदिर में विशेष उत्सव होते हैं। ऐसे अवसरों पर विशेषकर हजारों भगवती के उपासक यहां आते हैं। कांगड़ा से 16 मील की दूरी पर भगवती ज्वालामुखी का प्रसिद्ध मंदिर है। इस मंदिर की यात्रा के लिए केवल हिमाचल प्रदेश से ही नहीं अपितु देश के अनेक भागों से प्रतिवर्ष हजारों यात्री आते हैं। वर्ष में दो बार यहां सितम्बर अक्टूबर तथा मार्च में विशेष पूजा होती है। इसी प्रकार ऊना में चिंतपुरनी नवदेश्वर, सुजानपुरतीरा, रामगोपाल, दमतल, बृजराज स्वामी नूरपुर, शिव मंदिर तिलोकपुर तथा बाबा

वालक्नाथ देवट सिद्ध जसे गुफा मदिर भी आध्यात्मिक जिज्ञासुआ के पुण्य आकषण स्थल है।

किन्नौर के प्रसिद्ध मदिरा म शुगरा महेशुरा मदिर, चण्डिका देवी कोठी धनेश्वरी ऊखा निचार बौद्ध गोम्पा, जगी कानम, चीनी रग मिचो ताशीगोग लतरग सुनाम शिवलक्र, लिया और थागी उल्लेखनीय हैं। लाहौल के प्रसिद्ध गोम्पा करदग शशुर गुरूघटाल म है और स्पिति मे की डखर, टावो ठगुर और पिन के गोम्पा बौद्धा के पवित्र धाम हैं।

बिलासपुर म भगवती नयना देवी व्यास गुफा, गुग्गा नरसिंह देव इत्यादि के मदिर और सोलन म दवी भगवती माहूनाग इत्यादि के अनेक मदिर हैं।

इस सारे वत्तात से हम इस परिणाम पर पहुचते हैं कि हिमाचलवासियो की धार्मिक वत्ति का पोषण देन के लिए इन देवी देवताओ व मदिरा का विशेष योग दान प्राचीन काल म तो रहा ही है परन्तु आधुनिक युग म भी स्थानीय जनता के जीवन पर इनकी गहरी छाप है।

पारिवारिक जीवन

हिमाचल का पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखद शान्त और सादा है जिस पर देश क आर्थिक राजनतिक एव सामाजिक विकास का काफी प्रभाव पडा है। 1984 तक लोग बड सयुक्त परिवार म रहते थे। धीरे धीरे परिवारो का गठन छाटा पड रहा है। पहल तो परिवार का मुखिया चतुर और कमान वाला बडा बूढा समझा जाता था परन्तु अब छाटे परिवार की ओर झुकाव होन क कारण पिता ही मुखिया है। पतक परिवार की आरभ से प्रथा है। घर की स्त्री भले ही कई पुरुषा स दीघ आयु की हा तथा चतुर सूझ बूझ वाली और घरेलू कामकाज म निपुण हा उसका स्थान हर स्थिति म दूसरा ही हाता है।

एक सयुक्त परिवार म मा-बाप दादा दादी पुत्र-पुत्री या पौत्र पौत्रिया ही प्राय रहती है। मा बाप के रहन सब भाई और उनका परिवार इकट्ठे रहत हैं। परन्तु उसके बाद सब भाइ अपनी सुविधानुसार विभाजन कर देत है।

उन पुरुषो को छोडकर जा नौकरी या मजदूरी करते हैं शष घर क पुरुष खेता म हल चलाना पशु और भड-बकरिया चराना, लकडी काटना ढोना बगीचे और क्यारी की देख भाल करना आटा पीसने, घराट जाना रिश्ते-नात म पाहुनचारी, शादी गमी नाचना गाना राशन लाना इत्यादि कामा म सम्मिलित होत हैं। फिर भी स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो का काम सरल, मनमौजी और कम होता है।

पुरुष की अपक्षा गहिणी को पौ फटते उठना होता है। उठकर समीप की बावडी स पानी लाना गाय और भस दुहना, चाय या दूध बनाकर सारे परिवार

के लिए सुबह का खाना बनाना बच्चो को नहलाना, परिवार के लिए भोजन तयार करके खिलाना, खेतो म जाकर पुरुषा की सहायता करना घास काटना, गोबर खेता तक ले जाना, फसल काटकर खलिहानो तक ले जाना, लकडी जगल से लाना, सारे परिवार के कपडे धोना फसलो की निराई करना, रात को फिर भोजन बनाना और खिलाना, बरतन धोना बच्चो को सुलाना घर की सफाई करना, सब करने के बाद सबसे बाद मे सोना—यही हिमाचली नारी के जीवन म बदा है। वसे तो स्वतन्त्रता के बाद हिमाचल प्रदेश के गठन के फलस्वरूप हिमाचलवासियो के सामाजिक जीवन म काफी परिवतन हुए हैं, परन्तु हिमाचल की ग्रामीण नारी का जीवन अब भी श्रम और उपेक्षा से बोझिल है। केवल मलो और अय उत्सवो पर ही उस मनोरजन का अवसर मिल पाता है। एसी ही अवस्था म नारी मन अपनी वेदना को गीतो म बिखेर देता है—

> बरशें जा पाणिया पाथरों नभीजों,
> कलौजुगो रा माछो शाध कादियों न धोजों।

अर्थात कलियुग के पुरुष के लिए चाहे कितना श्रम, प्रेम, भक्ति और त्याग किया जाए, परन्तु उस निष्ठुर पर नारी की समपण भावना का तनिक भी प्रभाव नही पडता।

पारिवारिक जीवन म जो ममस्पर्शी दश्य यहा के लोक गीतो म उपलब्ध होते हैं उनके दशन अयन कहा? पुरान समय म जब क्षेत्रा म बहुपत्नी प्रथा थी, तब गह कलह प्राय देखने म आती थी। इसी तरह सास-बहू के झगडे भी। बहु पति प्रथा भी अब धीरे धीरे समाप्त होती जा रही है क्योकि नई पीढी की दष्टि मे यह पुरानी परम्पराए ठीक नही उतरतीं। आधुनिकता की छाप स हिमाचलवासियो का पारिवारिक जीवन भी अछूता नही है।

रीति रिवाज

रीति रिवाज द्वारा ही सामाजिक जीवन का बहाव ग्रामीण और जनपद लोगो के बीच बहता है। इसके अनुसार कुछ काय करना जो समाज के लिए कल्याण कारी या समाज मे बहुसख्यक के लिए लाभकारी है आवश्यक समझे जाते हैं। रीति रिवाजो की तथाकथित अच्छाई से इसे वह भावनात्मक महत्त्व प्राप्त होता है जिसकी शक्ति तभी महसूस होती है जब रीति रिवाज तोडने का कोई प्रयत्न करता है। ऐस उल्लघन को उस समूह का निरादर समझा जाता है जिनका दष्टिकोण जीवन म, इसकी आशाओ और आदर्शों म, उनके रीति रिवाजो म प्रतिबिम्बित होता है, विशेषत तब जब यह धार्मिक और पवित्र रूप धारण कर लेते हैं।

रीति रिवाज किसी समाज विशेष द्वारा निश्चित व्यवहार के नियम होते हैं, जिन्हें परम्पराओं से निभाया जाता है और जिनको भंग करना अनुचित समझा जाता है। रीति रिवाजों द्वारा ही सामाजिक जीवन की धारा विशेषत जहां लोग अनपढ़ हो बहती रहती है। रीति रिवाज द्वारा ही समाज विशेष की विरासत का संरक्षण हो पाता है। किसी स्थान के लोक जीवन की झलक रीति रिवाजों से भी मिलती है।

विवाह से पहले या सुहागवती स्त्री का बाल काटना या बाल कटे होना वर्जित है। ऐसा केवल विधवा होने पर ही होता है। विधवा स्त्री कोई गहना भी नहीं पहनती।

सरकार के अनेक प्रयत्नों के होते हुए भी अन्तर्जातीय विवाह के लिए सामाजिक प्रतिक्रिया उत्साहवर्द्धक नहीं है। इसी प्रकार अनुसूचित जाति के किसी पुण्य कार्य जैसे कथा, दवयज्ञ आदि में अपने आपको श्रेष्ठ मानने वाले ब्राह्मण खाना तो दूर पूजा करना भी ठीक नहीं समझते। ऐसी ही अनेक सामाजिक विषमताएं हैं। ऐसे सामाजिक वैषम्य को मिटाने की दिशा में, ऐसे लगता है हमें अभी बहुत दूर जाना है।

किसी के घर लड़का उत्पन्न हो तो सब गांव वाले तथा रिश्तेदार बधाई देने आते हैं और सबको गुड़ बांटा जाता है। लेकिन जब लड़की पैदा होती है तो कोई बात तक करना भी ठीक नहीं समझता। इस बारे में पहाड़ी में एक कहावत है—

छोहटी र हुओ चिन पस्ताव
एक जादे, एक दिन्द, एक मोरद

(लड़की उत्पन्न होने के फलस्वरूप मां बाप को तीन समय दुःख होता है—एक पैदा होने पर दूसरा विवाह में विदाई पर तीसरे मरने पर)

ऐसा होते हुए भी पूजा में या अन्य अवसरों पर कन्या को दान देना परम पुण्य समझा जाता है। धीरे धीरे नारी के प्रति समाज में सम्मान भाव बढ़ रहा है।

देवयज्ञ सत्यनारायण कथा विवाह एवं शोक—किसी एक परिवार का होते हुए भी गांव वालों का साझा कार्य समझा जाता है। इसी प्रकार गांव में कोई नया मकान बन रहा हो कहीं समीप ही नदी पर पुल बांधना हो या कोई सामूहिक कार्य हो, स्कूल या गांव की सड़क के लिए श्रमदान करना हो तो सामूहिक रूप से मुख्यत एक गांव और आवश्यकता पड़ने पर समीप के गांव के लोग भी हाथ बटाने में तत्पर रहते हैं। इसी प्रकार ग्राम देवता की सवारी गांव से बाहर जानी हो तो सारे गांव वाले मिलकर देवता के साथ जाते हैं।

एसा व्यक्ति जो ग्रामीण समाज की मान्यताओ का उल्लघन करता है और फिर दण्ड देने से इकार करता है उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाता है और लाग उसके किसी काम म सहायता नही देत हैं।

सन 1948 तक यहा के रीति रिवाजो पर बाहर की छाप बहुत कम थी क्योकि यातायात के साधन और पहाडी क्षेत्रो की दुगमता क कारण वह निरन्तर विकासशील विश्व के प्रभाव से अछूता रहा।

रबी और खरीफ की फसल बोने स पहल लाग प्राय ब्राह्मण को पूछ लेत हैं कि कौन सा दिन ठीक रहेगा। कई जगहो पर फसल की प्रथम उपलब्धि स्थानीय देवी देवता को भेंट की जाती है। फसल कटाई क समय लोग प्राय या तो प्रसाद बनाकर सब दिशाओ म बिखेरते हैं या मुट्ठी भर आटा लेकर बिखेरा जाता है और शेष भाग फसल काटने वाले परस्पर बाट लते है। यदि एक के स्थान पर दो बालियां लग जाए तो समृद्धि का चिह्न समझा जाता है। सक्राति, जन्माष्टमी, शिवरात्रि एव अन्य प्रमुख धार्मिक पर्वों के दिन हल चलाना वर्जित है।

कानूनी मुकदमो को छोडकर सभी सामाजिक और धार्मिक झगडे प्राय डूम और खुमली म निपटाये जात हैं।

कोई व्यक्ति यदि अपने से नीची जाति स विवाह कर ले या किसी ग्रामीण समाज के घोर अपराध के लिए बहिष्कृत कर दिया गया हो उस आदमी को जात मे फिर स मिलाने क लिए गाव की सारी बिरादरी इकट्ठी होती है। परस्पर पूरी बातचीत के बाद उस आदमी को बुलाकर ब्राह्मण के हाथ स मत्र क साथ उस व्यक्ति को पचगव्य पिलाया जाता है। सारी बिरादरी भोज मे जाति-बहिष्कृत आदि के साथ भोजन करती है, फिर देवी या दवता को भेंट चढाकर उसे बिरादरी म मिला लिया जाता है। परन्तु ईसाई या मुसलमान बनने पर ऐसा सभव नहा।

किन्नर, स्पिति और लाहौल मे हिन्दू धम का रीति रिवाजो पर प्रभाव अब भी है। स्त्री के गर्भिणी होने पर गर्भ रक्षा के लिए लाया कागज या भोजपत्र पर लिखे मन्त्र को गदन पर बाधते हैं। पुत्र होने पर डोलमा (तारा) देवी की पूजा होती है और नामा बुम छुम का पाठ करते हैं। दो सप्ताह तक मा का अछूत माना जाता है। लाहुल म लडका के भोटी और देशी दो दो नाम होत है।

मृत्यु के समय सभी लोगो मे अनाज बाटा जाता है। लामा किसी बौद्ध सूत्र का पाठ करत हैं। श्मशान यात्रा बडी धूमधाम से निकाली जाती है। अस्थियो का प्रवाह पहले तो मानसरोवर तक पर अब रिवालसर या गगा म किया जाता है। मृत्यु के तीसरे दिन पूजा होती है।

पचको का मनक के लिए बहुत बुरा माना जाता है। किन्नौर म मरने के बाद पन्द्रहवें दिन लामा होम-पूजा करते हैं और उन्हे दक्षिणा दी जाती है।

त्यौहार और मेले

त्यौहार और मेले मानव की सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास के ऐतिहासिक संस्मरण हैं। मानव ने जब कबीले के रूप में बसना प्रारम्भ किया तभी से उसकी पनपने वाली सामाजिक चेतना और संघ भावना ने यज्ञ या पूजा की प्रेरणा में आनन्द प्राप्ति के लिए सामूहिक गीतों, लोक-नृत्यों, त्यौहारों और मेलों को आरम्भ किया। यही सामूहिक वृत्ति मंगलमय उत्सवों का रूप धारण कर, मनुष्य समाज की अनेक परम्पराओं में बंधकर तथा धर्म से सम्वर्धित होकर जाति और राष्ट्र के सांस्कृतिक गौरव की प्रतीक बन गई। इसीलिए त्यौहार और मेले लोक जीवन के सबसे बड़े सांस्कृतिक प्रतिनिधि होते हैं। उत्सवों को रचने की प्रेरणा मन और प्रकृति से मिलती है। प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य ने जैसे सदा कला सृजन को प्रेरणा दी है वैसे ही प्रकृति ने उत्सवों के सृजन को भी प्रेरणा दी। लोक भावना ही उत्सवों तथा मेलों की जननी है। हिमाचल के त्यौहारों और मेलों के मूल में भी यही भावना काम करती है।

अन्य पहाड़ी लोगों की तरह हिमाचलवासियों को भी कठिन परिश्रम द्वारा जीविकोपार्जन करना पड़ता है। परिश्रम की थकान और जीवन की रुक्षता का पहाड़ी लोग इन्हीं गीतों और नृत्यों में खो देते हैं। प्रकृति के समान ये प्रसन्नचित्त लोग ऐसे अवसरों की बाट जोहते रहते हैं जब वे नृत्य कर सकें और अपने दुःख सुख को गाकर हल्का कर सकें। ऐसे ही अवसर हैं यहां के मेले और त्यौहार।

बच्चे वृद्ध नर-नारी सबको त्यौहारों से प्यार है और ये उनके जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। ऐसे अवसरों पर उन्हें अपने सुन्दर नये और रंग बिरंगे वस्त्रों अलंकारों के प्रदर्शन, बातचीत और सौगातों का आदान प्रदान और सबसे बढ़कर नृत्य और संगीत का आनन्द उठाकर संसार के दुःखों को भूलने का सुनहरा अवसर मिलता है।

गांव-गांव में, परगनों और तहसीलों में वर्ष में असंख्य मेलों और त्यौहारों का आयोजन होता है। लगभग सारे मेले और त्यौहारों का सम्बन्ध किसी धार्मिक पौराणिक कथा या स्थानीय पृष्ठभूमि से जुड़ा है। एक ओर मेले जहां सांस्कृतिक पर्व के रूप में उभरते हैं, दूसरी ओर इनका विशेष व्यापारिक महत्व भी है।

हिमाचलवासियों के प्रसिद्ध मेलों में रामपुर की लवी, सिरमौर में रेणुका, चम्बा का मिंजर, मण्डी की शिवरात्रि, बिलासपुर का नलवाड़ी, कुल्लू का दशहरा इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

सामूहिक मनोरंजन और उल्लास के साधन त्यौहार और मेलों के अवसर पर हिमाचल निवासियों को उनके यथार्थ रूप में देखा जा सकता है। लवी हिमाचल प्रदेश का एक प्रसिद्ध और बहुत पुराना मेला है। यह मेला प्रतिवर्ष 25 से 27

कार्तिक विक्रमी तदनुसार नवम्बर मास म रामपुर के स्थान पर जुडता है। सब जाति और सभी श्रेणी क लोग इसको किसी भदभाव के बिना मनात हैं और साल भर के दुख और चिंताओ को भूलकर एकदम आनन्द-सागर म डूब जात हैं। गाना-बजाना, नाचना हसना और दो घडी मौज कर लना यह जनता की मनोरजन-वृत्ति की मूल भावना है। गाव गाव की चाल-ढाल, बोली, ठिठाली पहनावा इत्यादि इस अवसर पर अपना परिचय स्वय दत हैं। व्यक्ति व्यक्ति स मिलता है और एक समूह दूसर समूह स। मला पर होन वाली य मुलाकात हिमाचली जनजीवन मे विविधता, नवस्फूर्ति नय विचार और अनुभवो का सचार करती हैं।

लोई स्थानीय बोल चाल म भेड या बकरी स ऊन उतारने क लिए प्रयुक्त होता है। इस शब्द का एक अन्य अथ लना या प्राप्त करना भी है। धीरे धीरे यही शब्द बिगड कर लवी बन गया। इस मेले म प्रधानत ऊन या ऊन स बनी वस्तुओ का व्यापार होता है। मल के दिनो म लाखो रुपयो का व्यापार होता है। इसलिए लवी मल का विशेष आर्थिक और व्यापारिक महत्त्व है। इस मेल म ऊन पशम पट्टू, दोहडू किल्टा गलीचे नमदे, खेस, बतन न्योजे चिलगोज और कम्बल एव अन्य स्थानीय वस्तुओ की बिक्री होती है।

लवी मेले म विशेषत तीन दिन तक खूब चहल पहल रहती है। भारत के अन्य भागो स भी शौकीन पयटक और व्यापारी लोग आत हैं। खूब खल तमाशे और भीड रहती है। रात को किन्नर और महासू क मनमोहक लोक-नत्यो एव लोक गीतो का प्रबन्ध किया जाता है। ये रोचक लोक-नत्य और लोक गीत रात रात भर चलत रहत हैं। य ही लोक जीवन की अविस्मरणीय तथा वास्तविक पूजी हैं।

लवी मेल पर नवीनता और प्राचीनता का एक सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। नि सन्देह मनुष्य की वास्तविक थाती—सामूहिक मनोरजन के साधन मल और त्योहार हैं और इनके बिना मनुष्य अपने सामूहिक दुख दद स कभी मुक्त नही हो सकता।

लवी मेले के समान ही सिरमौर म रेणुका देवी का मला भी प्रदेश का एक प्रसिद्ध मला है। यह मला सिरमौर की रेणुका तहसील म रेणुका झील के पास मनाया जाता है। यह मेला दिवाली के दस दिन बाद आरम्भ होकर पूर्णिमा तक चलता है। इसम तीन दिन विशेष उत्सव होते हैं।

प्रसिद्ध रेणुका झील के निकट परशुराम ताल और परशुराम मदिर है। रेणुका का मदिर पुरानी देवठी कहलाता है। इस स्थान का वणन श्री के० एम० मुशी ने भी अपने प्रसिद्ध उपन्यास भगवान परशुराम मे किया है। मा रेणुका और परशुराम की कथा का सविस्तार वणन पुराणो म भी मिलता है।

मल के अवसर पर रणुका झील के मनोरम घाट का दृश्य अत्यन्त आकपक होता है। मला देखने का आनन्द तब चरम-सीमा तक पहुच जाता है जब झूना पुल के समीप जो गिरि गगा पर बना है, यात्रियो और मला के रसिको का अपार समूह भगवान परशुराम की पालकी के स्वागत क लिए उमड जाता है। भगवान परशुराम की पालकी जामू ग्राम स आती है। हिरणसिगा नगाडे ढोल, शहनाई करताल जस लोकवाद्या की गूज क मध्य मा रणुका और भगवान परशुराम की जयजयकार स वातावरण गूज उठता है। कटाहा और जामना ग्रामा स भी परशुराम की दो पालकिया जलूस म शामिल हो जाती है। यह विशाल जनसमूह रणुका तीथ की ओर बढ़ता है जहा रेणुका झील का जल परशुराम ताल म प्रवेश करता है। यहा पालकी म रखी परशुराम की स्वण प्रतिमा उतारी जाती है और उसे जल-स्पश कराया जाता है। यह भगवान परशुराम द्वारा मा की चरणवन्दना है। फिर पालकी परशुराम मन्दिर म पहुचती है जहा विशष पूजा करने के बाद प्रतिमा मन्दिर म रखी जाती है। इसक बाद जलूस मल-स्थल म चारो ओर बिखर जाता है।

दूसरे दिन देवठान एकादशी क दिन प्रात काल रणुका झील के पवित्र जल म स्नान कर यात्रीगण अपनी आध्यात्मिक क्षुधा शात करत है। पहाडी और मदानी दोना भागो स लोग आत हैं। अनेक मनोरजन और सास्कृतिक कायक्रमा स मेला को चार चाद लग जाते हैं।

हिमाचल के परम्परागत और प्रसिद्ध मेलो म चम्बा म मनाये जान वाल प्रसिद्ध मला मिजर का विशष स्थान है। प्रतिवष जुलाई के अतिम रविवार को या अगस्त के प्रथम रविवार को चम्बा नगरी मे खूब चहल पहल रहती है।

चौगान का विशाल मदान चारो ओर स दुकानो रेडियो और बिसाती वस्तुओ स भर जाता है। हर प्रकार की वस्तुओ का व्यापार होता है। हिमाचली जनता भी दूरस्थ ग्रामा स अपनी परम्परागत वेशभूषा और कहीं-कहीं आधुनिकता की छाप लिए मला की रगीनी म चार चाद लगाती है।

इस मेले का स्थानीय जनता के लिए विशेष महत्त्व है। चम्बा नगरी समुद्र तल स 3 000 फीट की ऊचाई पर स्थित है और चारो ओर स देवदारु स भरी पवतमालाओ की शृखला है। यहा के 10 000 से भी अधिक निवासियो का मूल खाना मक्की पर आधारित है। मिजर का अथ ही मक्की है।

इस मेले का आधार एक उपाख्यान है। आज से 800 वष से भी पहल रावी नदी वतमान नगर स्थली के मध्य से बहती थी। वर्षाऋतु म इसम काफी बाढ आती थी और किनारो पर बसी जनता के जीवन और धन की प्रतिवष बहुत क्षति होती थी। बहुत पूजा और अचना के उपरान्त चम्बा नरेश को स्वप्न हुआ कि किसी जीव की विधिवत आहुति ही रुष्ट देवताओ को प्रसन्न कर सकती है।

फलत एक भैंसा की बलि ही इसके लिए श्रेष्ठ काय समझा गया।

एक हाथी पर सवार राजा जलूस का नतत्व करता हुआ नदी किनारे पहुचता था। एक भैंस को राजा के कर-स्पश स पवित्र कर चारो टागो से बाधकर नदी म धकेल दिया जाता है। किसी भी दशा म यह भैंसा किनारे पर नही लगना चाहिए क्योंकि इस चम्बा निवासियो के लिए अपशकुन समझा जाता था। इसलिए किनारे पर खडे लोग इस भसे को लम्बे-लम्बे लठो स किनारे पर आने स पहल नदी की ओर धकेल देत थे।

इस मल को इस विधि से मनाने के फलस्वरूप नगर की समद्धि तथा मक्की की फसल अच्छी होने की आशा बधती है। आरम्भ म एसी पूजा के कारण नदी ने अपना माग बदला। तब से लेकर यह मेला राज्य सरक्षण म मनाया जाता रहा है और इसी मले के अवसर पर ही दुगम और दूरस्थानो स लोग आकर अपने राजा के दशन भी कर पाते थे।

15 अप्रल 1948 स चम्बा के हिमाचल प्रदेश का एक जिला बन जाने से पुरानी प्रथा ने मानवीय रूप धारण कर लिया है। अब भसा की जगह एक नारियल एक चादी का सिक्का और एक मक्की नदी को भेंट की जाती है। हिमाचल प्रदेश के मन्त्रीगण, उच्च अधिकारी और स्वय राजा (भूतपूव के परिवार के सदस्य) इसम भाग लेते हैं। सरकार की ओर स भी इस मले को जनोपयोगी तथा मनोरजनाथ उचित समझकर धन व्यय किया जाता है।

चम्बा म त्रिलोकीनाथ मला भी अत्यन्त महत्त्वपूण है। चर या कुण मले वसतागमन पर मनाये जाते हैं। तीन स्वाग देव के प्रतीक—कुलजा गमी और मक्समी एक जलूस म ले जाए जाते हैं। ग्रामीण देव का पीछा करते हैं और वह गाव से भाग जाता है। अपना स्वाग निकालकर वह गमी और मक्समी स्वाग वालो के साथ नाचना आरम्भ कर देता है। यह ग्रामवासियो का वसतागमन पर प्राकृतिक हर्षोल्लास है।

भरमौर जनपद म मणिमहेश की यात्रा भी प्रसिद्ध धार्मिक उत्सव है।

कलाशपति शिव हिमाचलियो के लोकप्रिय पूज्य देव हैं। अलग-अलग रूपो म शिव-पूजा का इस प्रदेश मे प्रचलन है। मण्डी म शिव जनपदीय इष्ट हैं। भूतनाथ के रूप मे शिवरात्रि का प्रसिद्ध मेला उन्ही की आराधना म जुटता है। वसतारम्भ मे गिरिराज कन्या पावती और शिवजी के शुभ विवाह की पुण्य तिथि शिवरात्रि के दिन सब स्थानीय दवगण अपनी पुरातन संस्कृति की झाकी प्रस्तुत करते हुए हजारो लोगो के साथ मण्डी नगर म पधारते हैं। श्री राज माधव के दशनाथ और भगवान शकर को अपनी श्रद्धाजलिया अर्पित करते हैं। एक सप्ताह भर मण्डी नगर का कोना कोना गूज उठता है। इस विराट देव तथा जन-समूह म जहा प्राचीन परम्पराओ तथा सस्कृति के दशन होते हैं, वहा उद्योग व्यापार, खेल-कूद, विभिन्न

विकास तथा सभी कला सम्बन्धी विषय प्रस्तुत करते हैं। इस दिन विभिन्न देवगण सज धजकर अपने-अपने रथों पर बाजे गाजे सहित पड्डल मैदान की ओर प्रस्थान करते हैं और इस विशाल मैदान में एकत्र होते हैं वह दृश्य अत्यंत मनोरम होता है। इस मेले में पहले तो 300 से भी अधिक देवी-देवता अपने दल बल गाजे-बाजे सहित आते थे परन्तु अब सौ से कम देवी-देवता इस मेले में सम्मिलित होते हैं। शिवरात्रि मेले पर हिमाचल के अन्य मेलों की भांति सबसे बड़ा आकर्षण इस अवसर पर लोक-गीतों, लोक-नृत्यों और भांति भांति के लोक वाद्यों का प्रदर्शन है।

हिमाचल के अन्य क्षेत्रों की भांति वैसे तो कुल्लू में भी मेले वर्ष भर स्थान स्थान पर बहुविधि रंगीनियों को जुटाने और लुटाने का अवसर प्रदान करते रहते हैं परन्तु इन सबमें दशहरा का स्थान सर्वोपरि है। मयूर के समान कुल्लू क्षेत्र के सभी देवी-देवताओं को दशहरे पर एक स्थान पर एकत्र होने का अवसर मिलता है। देवताओं का यह उत्सव अक्टूबर में दशहरा के दिन आरम्भ होता है और पांच दिन बाद पूर्णिमा के दिन यह उत्कर्ष पर पहुंचता है। यह मेला प्रतिवर्ष कुल्लू नगर के ढालपुर स्थान पर जुटता है।

पुराने दिनों में जब कुल्लू पर राजा का राज था, सब देवी देवताओं के लिए मेले में सम्मिलित होना परमावश्यक था और लगभग 360 से भी अधिक देवी देवता एकत्र होते थे। 1947 तक 200 तक की संख्या में पूज्य देव पधारते थे। परन्तु जमींदारी समाप्त होने के कारण देवताओं की जमीन भी छिन गई और उसके सेवक भी कम हो गए और फलतः अब बहुत कम देवी देवता मेले पर आते हैं। सरकार और जनता के सहयोग से मेले को आकर्षक बनाने के लिए भरसक प्रयत्न किए जाते हैं।

दशहरा से कई दिन पूर्व तैयारियां आरम्भ हो जाती हैं, कई देवी-देवता बहुत दूर के ग्रामों से आते हैं। इनमें से कुछ तो 100 मील से भी अधिक दूरी से आते हैं और कई दिन पूर्व अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देते हैं। विज्ञान और परिवहन के इस युग में भी देवी-देवता बस या मोटर यात्रा अपवित्र कार्य समझते हैं। इसीलिए सभी देवी-देवता अपने श्रद्धालु के कंधों पर पैदल यात्रा करते हैं। दशहरे के दिन ढालपुर मैदान सब दिशाओं से आ रहे देवी-देवताओं और जन समूह और स्थानीय लोक-वाद्यों की धूम से गूंज उठता है। कुल्लू पहुंचकर प्रत्येक देवी देवता सबसे पहले भगवान रघुनाथ के मंदिर पर प्रधान देवता को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

दशहरा उत्सव की प्रथम सांझ को रघुनाथ की स्वर्णिम प्रतिमा मंदिर से एक विशाल जलूस में रथ में चढ़ाकर बाहर निकाली जाती है। यह रथ लकड़ी का बना एक विशालकाय होता है जिसे खींचने के लिए सैकड़ों व्यक्तियों के हाथ जुट

जाते हैं। 'जय रघुनाथ' के नारों से आकाश गूंज उठता है। इस जलूस की अगवानी रघुनाथ के साथ-साथ राजा के वर्तमान वंशज, मंत्रीगण एवं अधिकारी करते हैं। सब देवी-देवता इस जलूस की शोभा बढ़ाते हैं। पांच दिन तक रघुनाथ की सवारी इसी मैदान में ठहरती है और अन्य देवी-देवता अपने निश्चित स्थान पर विराजमान होते हैं। मेले के अन्तिम दिन सभी देवी-देवता रावण की लंका जलाने के लिए विशेष तैयारी करते हैं। शाम को सब देवी-देवता भगवान रघुनाथ के रथ के समीप एकत्र होते हैं और रघुनाथ के पुजारी के संकेत पर जलूस व्यास नदी के तट पर कांटों और झाड़ियों से बनी लंका पर आक्रमण कर उसे जलाते हैं। विजय उपलब्धि में विशेष पूजा भी होती है। रथ वापस खींचा जाता है। धीरे धीरे देवी-देवता भी निज स्थानों की ओर प्रस्थान करते हैं।

इसी प्रकार बिलासपुर के अनेक मेलों में नयना देवी, मारकण्डेय और नल वाड़ मेले उल्लेखनीय हैं। नयना देवी बिलासपुर के दक्षिण-पश्चिम में समुद्र-तल से 4 000 फीट ऊंची त्रिकोण पहाड़ी पर स्थित है। यहां से एक ओर गोविन्द सागर और दूसरी ओर आनन्दपुर साहब का अनुपम दृश्य नजर आता है।

नयना देवी प्रसिद्ध ऐतिहासिक मन्दिर में दूर-दूर से लाखों लोग दर्शनार्थ और मनोकामना की पूर्ति के लिए वर्ष भर आते रहते हैं। परन्तु अगस्त मास में श्रावण अष्टमी के दिन और नवरात्री पूजा के अवसर पर इस स्थान पर एक लाख से भी अधिक लोग नयना देवी की चहल-पहल बनाते हैं। सब ओर मेले का अनुपम वातावरण और धूम धाम दीखती है। भक्तों के साथ साथ दर्शकों की भी कमी नहीं होती।

इसी प्रकार बन्दला पहाड़ की ओट में, दाबी की घाटी में गसाड़ गांव के दूसरी ओर ऋषि मारकण्डेय का पवित्र स्थान है। समीप ही भगवान राम और कैलाशपति शिव के मन्दिर हैं। कहते हैं कि एक बार ऋषि मारकण्डेय ने इसी स्थान पर पुत्र प्राप्ति के लिए तपस्या की थी, जो फलीभूत भी हुई। इसलिए लोग आज तक यहां पुत्र प्राप्ति की मनोकामना लेकर आते हैं।

मेला मारकण्डेय बैशाखी के दिन जुड़ता है। चारों ओर दुकानें सजती हैं। स्थानीय जनता के अतिरिक्त कांगड़ा, मण्डी, कुल्लू और शिमला से भी लोग सम्मिलित होते हैं। पंजाब और हरियाणा से लोग आते हैं। रात को सर्दी होते हुए भी, वहां की घाटी रोशनी से जगमगा उठती है। दो दिन तक खूब धूम रहती है।

भूण्डा यज्ञ पश्चिमी हिमालय के कुछ स्थानों में अब तक होता था। कहते हैं आरम्भ में यह उत्सव केवल पांच स्थानों—काओममल सुकेत में, निरमंड कुल्लू में व नगर और निरत बुशहर तक सीमित था परन्तु बाद में बहुत से स्थानों तक फैला। यहां तक कि ब्रिटिश सरकार ने 1860 में इस प्रथा की समाप्ति की

आना भी दे दी थी फिर भी गुप्त रूप से यह उत्सव हर बारह वर्ष बाद कुछ स्थानों पर होता रहा।

निश्चित तिथि से तीन महीने पहले बेडा जाति के एक मनुष्य को भूण्डा के लिए चुना जाता था। तीन महीने तक मन्दिर के खर्च पर उस और उसके परिवार को बडे आराम और सम्मान से रखा जाता था। इसी समय मे वह 400 से 500 हाथ लम्बा मुंजी घास का रस्सा बना लेता था। भूण्डा के दिन दूर और समीप के ग्रामीण अपने देवी देवताओं को लेकर गाजे बाजे सहित भूण्डा स्थान पर पहुंच जाते थे। बेडे को साथ लेकर एक जलूस चलता था। बेडा के तन पर एक केसरिया कपडा और लाल सूत होता था। उसके हाथ मे नीले सूती कपडे का छत्ता देकर वह सपरिवार जलूस मे चलता था। आरम्भ मे एक बकरे की बलि दी जाती थी। जब जलूस भूण्डा स्थान पर पहुचता तब तयार की गई रस्सी का सिरा पहाड के ऊपर एक खम्बे मे बांध दिया जाता था और दूसरा पहाड की तलहटी मे गाडे गए खम्भे मे। फिर बेडा को मन्दिर मे ले जाकर देवता के अर्पित कर दिया जाता था। इसके बाद बेडा एक जलूस की शक्ल मे पहाड की चोटी पर पहुचता था। उसके परिवार के लोग और हजारो की सख्या मे नर नारी नीचे खडे रहते थे। रस्से के ऊपर एक त्रिकोण लकडी का आसन रखकर उसमे बेडा बैठ जाता। बोझ को समान रखने के लिए त्रिकोण लकडी के दोनो ओर बालू भरे थले बेडा के पैरों से लटके रहते। पुरोहित के सकेत पर बेडा को रस्से के आसन पर नीचे छोड दिया जाता था। उसकी मृत्यु या जीवन विशेष परिस्थितियो पर निर्भर करता था। यदि वह बच गया तो उसे कुछ पैसा मन्दिर के कोष से और कुछ पैसा दर्शक लोग भी देते थे। कई बार बेडे बच जाते थे पर कई अंधविश्वासी और रूढिवादी लोग बेडे के बचने को सम्बन्धित रियासत और जनता के लिए दुर्भाग्य का सूचक समझते थे। इसलिए ऐसे लोग बेडे को बीच मे गिराने के लिए गुप्त रूप से प्रयत्न करते थे। अन्तिम भूण्डा 1862 मे दिया गया था जिसमे मनुष्य के स्थान पर एक बकरा चलाया गया। अब भूण्डा देने वाले लोगो मे इतनी जागृति आ गई है कि वह इस बलि को उचित नही समझते और अब यह उत्सव केवल इतिहास का भाग बन गया है।

बिलासपुर का नलवाड मेला प्रतिवर्ष विक्रमी 4 चैत्र तक चलता है। इस मेले मे मवेशी बेचे और खरीदे जाते हैं। नलवाड का मतलब भी मवेशी व्यापार ही है। यह मेला बिलासपुर मे आज से कुछ वर्ष पूर्व आरम्भ किया गया था। पहले यह मेला बिलासपुर के प्रसिद्ध मैदान साण्डू मे मनाया जाता था जो अब गोविन्द सागर मे जलमग्न हो गया। अब यह मेला लुहनु मैदान मे जुडता है। प्रतिवर्ष 2 000 के लगभग व्यापारी 10 000 से अधिक बैल लाते थे परन्तु अब यह सख्या कुछ कम भी होने लग गई है। मेले का विधिवत उद्घाटन समारोह

होता है और मेले के अंतिम दिन श्रेष्ठ पशुओं के लिए पुरस्कार वितरण समारोह भी होता है। मेले के पहले चार दिन केवल पशुओं की बिक्री और खरीद होती है शेष चार दिनों में मेले के अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम भी चलते रहते है। सब प्रकार की दुकानें सजती है। मेले के सारे खेल-तमाशों का आनन्द मिलता है।

नलवाड़ के ऐसे ही मेले हिमाचल के अन्य स्थानों जैसे नालागढ़, जगतखना, सुंदर नगर, भगराटू, बरछवाड़, कांगड़ा में जुड़ते हैं। इस मेले में पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के हर जिले से व्यापारी और मेले के शौकीन आते हैं।

इसके अतिरिक्त बिलासपुर में बसंत पंचमी, होला, काली देवी, झण्डा, गुग्गा चमन्यों गुग्गा, भटेर, गुग्गा घेरवी इत्यादि अनेक मेले भी जुड़ते है।

कांगड़े में चैत्र संक्राति से बसाखी तक खेल रली वस्तुतः शिव पार्वती विवाह का एक आकर्षक उत्सव है।

भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की नवमी गुग्गा नवमी के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन बिलासपुर, मंडी और विशेषकर कांगड़ा मे लोक देवता गुग्गा जाहर पीर की मढ़ी पर एकत्र होकर लोग श्रद्धा भक्ति पूर्वक गुग्गा-पूजन करते है। जगह जगह मेले लगते हैं और हजारों लोग मेलों की रंगीनियों को चार चांद लगाते है। गुग्गा हिमाचल में चम्बा की भट्यात तहसील, जिला कांगड़ा मंडी का निचला भाग, बिलासपुर, नालागढ़, अरकी और कहीं कहीं सिरमौर के क्षेत्र में एक मान्यताप्राप्त लोक देवता हैं। इन सब जगहों पर गुग्गा नवमी के दिन विशेष उत्सव होते हैं।

तहसील देहरा में गरली ग्राम से 15 किलोमीटर की दूरी पर कालीश्वर महादेव के मन्दिर के समीप मकर संक्राति और बशाखी के दिन हर वर्ष व्यास के दोनों ओर बड़ा भारी मेला लगता है। दूर दूर से लोग इस मेले में स्नानार्थ आते हैं। हजारों लड़कियां की टोलियां गाती हुई रली तथा रलु को यहां व्यास के तट पर खड़े होकर जल में प्रवाहित करते हैं।

ज्वालामुखी देवी मन्दिर और भगवती वज्रेश्वरी मन्दिर के सामने वर्ष में दो बार विशेष उत्सवों का आयोजन होता है, जिनमें लाखों भक्त और मेले के शौकीन लोग हिमाचल ही नहीं देश के अन्य भागों से आते हैं। प्रत्येक त्यौहार में लोक गीत एवं लोक-नृत्यों का प्रमुख स्थान रहता है।

हिमाचल के त्यौहार और मेले यहां के लोक-जीवन में सामूहिक आनन्द भावना का संचार करने वाले महान प्रेरणा स्रोत हैं। लोक गीत, लोक-नृत्य लोकाभिनय का पूरा प्रदर्शन इन लोकोत्सव में प्राप्त होता है जो लोक जीवन का वास्तविक सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व करते हैं।

भापा, साहित्य एव कला की प्रगति

यानि अस्माक सुचरितानि, तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।

—उपनिपद्

भारत स्वतन्त्रता और 15 अप्रल 1948 म हिमाचल प्रदेश की स्थापना के बाद सास्कृतिक पुनरुत्थान की जो विशाल लहर इस पहाडी प्रदश मे उठी उसने पहाडी सस्कृति के सभी पक्षो और कला के अनेक रूपो को आप्लावित कर उनको उजागर कर दिया। इस काल म सजनात्मक क्रियाकलाप का जमा विस्तार हुआ और जो उपलब्धिया हुइ, वे अभूतपूव हैं। बुद्धिजीवियो की सजनात्मक चेतना को नई सामाजिक परिस्थितियो से जो सहज स्फुरण मिला उसके अतिरिक्त सरकार ने भी आर्थिक विकास की अनेक योजनाओ क साथ साथ कलाओ को प्रोत्साहन और सास्कृतिक विकास का दायित्व भी अपन ऊपर लिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 29 माच, 1968 को हिमाचल प्रदेश भापा सस्थान की स्थापना हुई। इस सास्कृतिक जागरण की अगली कडी के रूप म प्रदेश की भापा साहित्य एव कला एकादमी हिमाचल प्रदेश विधान सभा से एक विशेप प्रस्ताव द्वारा स्थापना हुई। भापा सस्थान और एकादमी ने जहा सस्कृत हिन्दी और उदू जसी भापाओ क लिए प्रयत्न किए वहा लोक भापा (पहाडी) को भरसक प्रोत्साहन देने की दिशा म भी प्रशसनीय काय किया। हजारो वर्पों स रौंदी हुई विस्मत अपक्षित, पुरानी पहाडी सस्कृति [illegible] को न केवल दक्षता से स्मरण करना

भी कर सकते हैं।

15 अप्रैल, 1948 के दिन जब हिमाचल प्रदेश की 30 रियासतों को एक सूत्र में पिरोया गया, उस समय शायद कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि ये सब छोटी छोटी रियासतें जो जुगनू की भांति चमकने का नाटक कर रही थीं किसी दिन एक सूत्र में पिरोयी जाकर एक मशाल बन जायेंगी। और एक लोकभाषा संस्कृति और कला के माध्यम से पहाड़ी संस्कृति की आत्माभिव्यक्ति की दिशा में अग्रसर होगी।

आरम्भ में प्रत्येक क्षेत्र की श्रेष्ठ लोक नर्तक मंडली को प्रतिवर्ष 15 अप्रैल को हिमाचल दिवस पर आमन्त्रित करने की परम्परा तथा इसी प्रकार गणतन्त्र दिवस पर हिमाचल का एक श्रेष्ठ लोकनर्तक दल प्रतिवर्ष दिल्ली जाने लगा। धीरे धीरे हिमाचल के लोक-गीतों, लोक-नृत्यों की लोकप्रियता प्रदेश से बाहर भी बढ़ने लगी। हिमाचल के सभी प्रमुख मेलों एवं उत्सवों पर इनको प्राथमिकता मिलने लगी।

1955 में शिमला में आकाशवाणी की स्थापना के फलस्वरूप पहाड़ी लोक-गीतों का स्थानीय उपभाषाओं में पहली बार कार्यक्रम प्रस्तुत होने लगा। इस ओर आकाशवाणी शिमला के तत्कालीन अधिकारी और देश के उच्च कोटि के कलाकार श्रीयुत एस० एस० एम० ठाकुर ने सराहनीय कार्य किया। उन्होंने पहाड़ी भाषा और लोक-गीतों की ओर तब ध्यान दिया जब बहुत सारे लोग इसे निरर्थक पिछड़ेपन की निशानी समझते थे। आकाशवाणी शिमला ने हिमाचलीय लोकवार्ता को प्रोत्साहन देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है और भविष्य में इस कार्यक्रम के विस्तार की आशा है।

अप्रैल 1955 में लोक सम्पर्क विभाग द्वारा एक हिन्दी मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' का प्रारम्भ भी प्रदेश के साहित्यिक क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक घटना थी। इस पत्रिका के माध्यम से हिमाचल सम्बन्धी सामग्री प्रकाश में आने लगी। पिछले दस वर्षों से साप्ताहिक 'गिरीराज' का प्रकाशन भी प्रारंभ किया गया है।

1968 में त्रैमासिक पहाड़ी पत्रिका 'हिमभारती' और उसके बाद सोमसी श्रीयुत हरिशचन्द्र पाराशर के सम्पादन और ठाकुर मौलूराम, अमरनाथ शर्मा, डा० वंशीराम शर्मा के सहयोग से भाषा संस्थान एवं अकादमी के तत्वाधान में उदय हुई। इस पत्रिका का मूल उद्देश्य पहाड़ी भाषा, कला और संस्कृति पर *महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित करना तथा अनेक पहाड़ी लेखकों को प्रोत्साहन देना* है। पिछले वर्षों में हिमभारती के माध्यम से भी पहाड़ी में लिखने वाले अनेक कवि, कहानीकार, निबन्धकार और नाटककार पहाड़ी साहित्य जगत पर उभरे हैं। पर यह समय ही बता सकेगा कि इनमें से कौन अपने ध्येय के प्रति

सच्ची आस्था लगन और प्रतिभा की कसौटी पर पूरा उतरेगा। कुछ कविताओं या लेख प्रकाशित कर या सम्मेलनों में सुनाकर कोई सच्चा साहित्यकार नहीं बन पाता। उसके लिए तो समय ही सबसे बड़ा पारखी है। 1945 से अकादमी की शोध पत्रिका 'सोमसी' का प्रकाशन भी हिमाचल की साहित्यिक गतिविधियों में मील पत्थर का काम कर रही है। अब डॉ० बंशीराम शर्मा ही 'सोमसी' और 'हिमभारती' का सम्पादन देख रहे हैं।

भाषा विभाग ने भी आचार्य तुलसीरमण के सम्पादन में पिछले 5 वर्षों से 'विपाशा' का प्रकाशन आरंभ किया है। इधर पिछले दशक में अनगिनत पत्र पत्रिकाओं की बाढ़-सी आ गई है। लेकिन ऐसा लगता है कि इनमें से अधिकतर सरकारी विज्ञापन बटोरने तक ही सीमित हैं। किसी विचारधारा भाषा कला एवं साहित्य पक्ष को लेकर प्रकाशित नहीं हो रही हैं। राजनीतिक पत्रों का जिक्र मैं यहां नहीं करूंगा। अच्छी पत्रिकायें गिनी चुनी हैं। इनमें से कुछ पत्रिकाओं का पहाड़ी भाषा, संस्कृति और कला के प्रोत्साहन में विशेष योगदान रहा है।

यद्यपि इन सबमें श्रेष्ठ और उत्कृष्ट पत्रिकायें बहुत कम हैं। तथापि यह रुझान भविष्य के लिए नयी संभावनाओं के प्रति आशा जगाता है। जिस निष्ठा और ईमानदारी के आचरण की अपेक्षा लेखक सम्पादक प्रकाशक और पाठक से की जाती है उसमें अभी भी वृद्धि की आवश्यकता है। हिमाचल के कला-क्षेत्रों में श्री किशोरीलाल वैद्य और ओमचन्द हांडा की पुस्तकें 'पहाड़ी चित्रकला' और 'पहाड़ी लोक-कला' पहाड़ी क्षेत्र के कला-जगत में एक महत्वपूर्ण घटना मानी जानी चाहिए।

अभी तक हिमाचल के जनपदीय साहित्य की ओर बहुत कम लेखकों का ध्यान है।

इस दिशा में डा० पद्मचन्द्र कश्यप का कुल्लवी गीतों पर शोध प्रबन्ध डा० जसटा की रचना पर्वतों की गूंज डा०बंसीराम शर्मा का किन्नौरी लोक साहित्य पर शोध प्रबन्ध डा० एम० एन० रंधावा का कांगड़ी लोक गीत संग्रह, श्री मोलूराम द्वारा सम्पादित लामण संग्रह गौतम व्यथित का कांगड़ी लोक साहित्य पर, डा० काशी राम का मंडियाली लोक साहित्य पर और डॉ० खुशीराम गौतम का सिरमौरी लोक साहित्य पर शोध प्रबन्ध है। तथा हिमाचल के लोक-सम्पर्क विभाग द्वारा प्रकाशित हिमाचल के लोक गीत प्रशंसनीय संग्रह हैं। इसी विषय पर श्री एम० एस० एस० ठाकुर का हिमाचली लोक गीत संग्रह 'हिमाचल लोक लहरी' एक प्रशंसनीय प्रयोग है। लोकगीतों की स्वर लिपि प्रत्येक लोक-गीत के साथ देकर लेखक ने महत्वपूर्ण कृति प्रस्तुत की है।

पहाड़ी कविता में श्रीयुत पीयूस गुलेरी (प्रत्युश गुलेरी) की रचना 'मेरा देश म्हाचल', गौतम व्यथित के संग्रह 'चेते' और 'पहाड़ा दे अत्थरू' पहाड़ी कविता

साहित्य म उत्तम रचनायें कही जायेंगी। डा० व्यथित द्वारा सम्पादित अन्य सग्रह हैं 'मिजरा (कागडी कवितायें) कागडी लोक कथायें इत्यादि। जहा पहाडी की मुख्य धारा कागडी म नि सन्देह उत्साहजनक प्रगति हुई है, वहा मडियाली, कुल्लवी कहलूरी, महासुवी और सिरमौरी उपभाषाओ की प्रगति कुछ धीमी है। इस अवरोध का एक कारण इन उपभाषाओ के साहित्यकारो की इस दिशा में अरुचि भी हो सकती है। फिर भी महासुई म प्रकाशित काहनसिंह जमाल का पहाडी कविता सग्रह 'गिरी गागे री धारो', श्री सी० आर० बी० ललित का जुहणे रे आशू, सिरमौर म विद्यानन्द सरैक का कविता सग्रह 'चिट्टी चान्दर, जगदीश शर्मा का कविता सग्रह नवेथिलके श्री देशराज शर्मा की रचना गुग्गा जाहर पीर और पहाडी भाषा' पर ठाकुर मोलूराम की रचना उल्लेखनीय है।

हिमाचल सम्बन्धी लोक कथा सग्रहो म मुख्यत पाच सग्रह डा० हरिराम जसटा का अग्रजी लोककथा सग्रह सतराम वत्स श्री व्यथित दशराज शर्मा और किशोरीलाल वद्य द्वारा सग्रहीत हिमाचल की लोककथा अच्छा प्रयत्न है।

इसी सदभ म श्री यशपाल का मनुष्य के रूप, भ० र० कपूर द्वारा रचित 'अटूट सिलसिले, 'एक अदद औरत, नीरू और हीरू, श्री शातारुमार का उपन्यास 'मन के मीत 'ज्योतिमयी मगतष्णा किशोरीलाल वद्य डा० सुशीलकुमार फुल्ल द्वारा सम्पादित 'सहज कहानिया और आज हिन्दी कहानी सग्रह आधुनिक कहानी कला की दष्टि से महत्त्वपूण रचनाए हैं। श्री हरदयाल सिंह का उपन्यास 'सामाजिक कारा क बदी, तिनके और लहरें, श्री मनसाराम का उपन्यास देवागना और श्री एन श्रीमती शाताकुमार का कहानी सग्रह 'पहाड बेगाने नही होगे' हिमाचल की लोककथाए इत्यादि उल्लेखनीय रचनाए हैं।

नाटक क्षेत्र म नरेन्द्र अरुण का पहाडी नाटक, 'लद्दाख किनारे रामकृष्ण कौशल का तीन आयाम, श्री सुमन का गल्ला हाई बीतिया तथा हरिराम जसटा का सास्कृतिक नाटक रामानुज भरत 'गाधीजी के देश म, वक का राजा, महात्मा बुद्ध की घर वापसी, के नाम उल्लेखनीय है।

भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित निबन्ध, कहानी, नाटक और कविता-सग्रह भी हिन्दी और पहाडी साहित्य क्षेत्र म अपने ढग क अनूठे सग्रह हैं। पहाडी भाषा के सग्रह की बात चली है तो हिमाचल के लोक सम्पक विभाग द्वारा प्रकाशित श्री रामदयाल नीरज द्वारा सम्पादित हिमाचली लोकगाथायें नि सदेह महत्त्वपूण दिशा-सूचक रचना है।

निबन्ध साहित्य म श्रीयुत लालचन्द प्रार्थी द्वारा रचित 'कलूत देश की कहानी' शम्मी शर्मा की पावती, और हरिराम जसटा की रचना भारत म 'नागपूजा, हिमाचल गौरव' हिमाचल की लोक-सस्कृति पहाडी लोक जीवन, लोक साहित्य

सच्ची आस्था लगन और प्रतिभा की कसौटी पर पूरा उतरेगा। कुछ कविताओ या लेख प्रकाशित कर या सम्मेलनो म सुनाकर कोई सच्चा साहित्यकार नही बन पाता। उसके लिए तो समय ही सबसे बडा पारखी है। 1945 से अकादमी की शोध पत्रिका सोमसी का प्रकाशन भी हिमाचल की साहित्यिक गतिविधियो म मील पत्थर का काम कर रही है। अब डा० वशीराम शर्मा ही सोमसी और हिमभारती का सम्पादन देख रहे हैं।

भाषा विभाग ने भी आचार्य तुलसीरमण के सम्पादन म पिछले 5 वर्षों से विपाशा का प्रकाशन आरभ किया है। इधर पिछले दशक में अनगिनत पत्र पत्रिकाओ की बाढ सी आ गई है। लेकिन ऐसा लगता है कि इनमे से अधिकतर सरकारी विज्ञापन बटोरने तक ही सीमित हैं। किसी विचारधारा भाषा कला एव साहित्य पक्ष को लेकर प्रकाशित नही हो रही हैं। राजनीतिक पत्रो का जिक्र मैं यहा नहा करूगा। अच्छी पत्रिकायें गिनी चुनी हैं। इनमे से कुछ पत्रिकाओं का पहाडी भाषा, संस्कृति और कला के प्रोत्साहन म विशेष योगदान रहा है।

यद्यपि इन सरस श्रेष्ठ और उत्कृष्ट पत्रिकायें बहुत कम हैं। तथापि यह रुझान भविष्य के लिए नयी सभावनाओ के प्रति आशा जगाता है। जिस निष्ठा और ईमानदारी के आचरण की अपेक्षा लेखक सम्पादक प्रकाशक और पाठक से की जाती है उसम अभी भी वृद्धि की आवश्यकता है। हिमाचल के कला क्षेत्रो म श्री किशोरीलाल वद्य और ओमचन्द हाडा की पुस्तक पहाडी चित्रकला और पहाडी लोक-कला पहाडी क्षत्र के कला जगत् म एक महत्वपूर्ण घटना मानी जानी चाहिए।

अभी तक हिमाचल के जनपदीय साहित्य की ओर बहुत कम लेखको का ध्यान है।

इस दिशा म डा० पदमचन्द्र कश्यप का कुल्लवी गीतो पर शोध प्रबध डा० जसटा की रचना पर्वतो की गज डा०वशीराम शर्मा का किन्नौरी लोक साहित्य पर शोध प्रबन्ध डा एम० एम० रधावा का कागडी लोक गीत सग्रह श्री मोनूराम द्वारा सम्पादित लामण सग्रह गौतम व्यथित का कागडी लोक साहित्य पर, डा काशी राम का मडियाली लोक साहित्य पर और डा० खुशीराम गौतम का सिरमौरी लोक साहित्य पर शोध प्रबन्ध है। तथा हिमाचल के लोक सम्पर्क विभाग द्वारा प्रकाशित हिमाचल के लोक गीत प्रशसनीय सग्रह हैं। इसी विषय पर श्री एम० एस एस० ठाकुर का हिमाचली लोक गीत सग्रह हिमाचल लोक लहरी एक प्रशसनीय प्रयोग है। लोकगीतो की स्वर लिपि प्रत्येक लोक-गीत के साथ देकर लखक न महत्वपूर्ण कृति प्रस्तुत की है।

पहाडी कविता म श्रीयुत पीयूस गुलेरी (प्रत्युश गुलेरी) की रचना मेरा देश म्हाचल, गौतम व्यथित के सग्रह चते और पहाडा दे अत्थरू पहाडी कविता

साहित्य म उत्तम रचनायें कही जायेंगी। डॉ० व्यथित द्वारा सम्पादित अन्य सग्रह हैं 'मिजरा (कागडी कवितायें), कागडी लोक-कथायें इत्यादि। जहा पहाडो की मुख्य धारा कागडी मे नि स देह उत्साहजनक प्रगति हुई है, वहा मडियाली, कुल्लवी कहलूरी, महासुवी और सिरमौरी उपभाषाओ की प्रगति कुछ धीमी है। इस अवरोध का एक कारण इन उपभाषाओ के साहित्यकारो की इस दिशा मे अरुचि भी हो सकती है। फिर भी महासुई म प्रकाशित काहनसिह जमाल का पहाडी कविता सग्रह 'गिरी गागे री धारौ', श्री सी० आर० बी० ललित का 'जुहणे रे आगू', 'सिरमौर मे विद्यानन्द सरैक का कविता सग्रह चिट्टी चादर', जगदीश शर्मा का कविता सग्रह न्तवेचिलक' श्री देशराज शर्मा की रचना 'गुग्गा जाहर पीर और पहाडी भाषा पर ठाकुर मोनूराम की रचना उल्लेखनीय है।

हिमाचल सम्बन्धी लोक-कथा सग्रहो म मुख्यत पाच सग्रह डॉ० हरिराम जमटा का अग्रेजी लोककथा सग्रह, सन्तराम वत्स, श्री व्यथित, दशराज शर्मा और किशोरीलाल वद्य द्वारा सग्रहीत हिमाचल की लोककथा अच्छा प्रयत्न है।

इसी सदभ म श्री यशपाल का 'मनुष्य के रूप', भ० र० कपूर द्वारा रचित 'अटूट सिलसिल', 'एक अदद औरत', 'नीरू और ट्रीम', श्री शाताकुमार का उपयास 'मन के मीत 'ज्यातिमयी मगतष्णा, किशोरीलाल वैद्य, डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल द्वारा सम्पादित 'सहज कहानियां और अनत हिदी कहानी सग्रह आधु निक कहानी कला की दष्टि स महत्त्वपूण रचनाए हैं। श्री हरदयाल सिह का उपयास 'सामाजिक कारा के बदी तिनके और लहरें, श्री मनसाराम का उपयास 'दवागना और श्री एव श्रीमती शाताकुमार का कहानी-सग्रह 'पहाड बगाने नही होग' हिमाचल की लोककथाए इत्यादि उल्लखनीय रचनाए हैं।

नाटक-क्षेत्र म नरेद्र अरुण का पहाडी नाटक, 'सद्दाय किनारे, रामकृष्ण कौशल का तीन आयाम, श्री सुमन का गल्ला हाई बीतियां तथा हरिराम जगटा का सांस्कृतिक नाटक रामानुज भरत गाधीजी के देश म, यक्ष का राजा, महात्मा बुद्ध की घर वापसी क नाम उल्लखनीय हैं।

भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित निबध, कहानी, नाटक और कविता-सग्रह भी हिदी और पहाड़ी साहित्य-क्षत्र म अपन ढग क अनूठे सग्रह हैं। पहाडी भाषा के सग्रह की बात चली है तो हिमाचल क सार सम्पर्क विभाग द्वारा प्रकाशित श्री रामदयाल नीरज द्वारा सम्पादित हिमाचली लोकगाथायें निसन्देह महत्त्व पूर्ण दिशा-सूचक रचना है।

निबध साहित्य म श्रीयुत लालचन्द प्रार्थी द्वारा रचित कुलूत देश की कहानी सम्मी शर्मा की 'पार्वती और हरिराम जगटा का रचना भारत म 'नागपूजा, हिमाचल गौरव हिमाचल की लोक-संस्कृति पहाडी लोक-जीवन, लोक-साहित्य

व लोक संस्कृति पर संग्रहणीय ग्रंथ हैं। अंग्रेजी में सुखदेव सिंह चिब, डा० ओहरी और किशोरी लाल वैद्य की हिमाचल प्रदेश सम्बन्धी रचनाओं का अपना स्थान है।

पहाड़ी भाषा

हिमाचल प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाली 95 प्रतिशत जनता की मातृभाषा पहाड़ी है। पहाड़ी भाषा का हिमाचली लोक जीवन में वही स्थान है जो पंजाब में पंजाबी का उत्तर प्रदेश में अवधी और ब्रजभाषा और सबसे बढ़कर जो शरीर में आत्मा का स्थान है। पहाड़ी भाषा की प्रमुख मान्यता प्राप्त उपभाषायें निम्नलिखित हैं—

(1) मंडियाली—वर्तमान मंडी जिला में बोली जाती है। इस भाषा के लोक साहित्य पर डा० नरेन्द्रनाथ उज्ज्वल जगतपाल एवं डॉ० काशीराम ने अनुसंधान किया है।

(2) चम्बयाली—जिला चम्बा की प्रमुख लोक भाषा है। इस भाषा के लोक वार्त्ता पक्ष पर श्री सुमन और रामचन्द्र गुप्त ने लेख प्रकाशित किए हैं।

( ) कांगड़ी—वर्तमान जिला कांगड़ा, हमीरपुर और ऊना की लोकभाषा है। इसके लोक-साहित्य पर डॉ० व्यथित, श्री श्यामलाल डोगरा ने अनुसंधान किया है।

(4) सिरमौरी—वर्तमान जिला सिरमौर की लोक भाषा है। सिरमौरी लोक-साहित्य पर डा० खुशीराम गौतम ने अनुसंधान किया है।

(5) महासुवी—वर्तमान जिला शिमला (पहले महासू) और सोलन की लोक भाषा है। इस उपभाषा पर हरीराम जसटा के अनुसंधानात्मक लेख हिमाचल प्रदेश के भाषा विभाग एवं एकादमी ने प्रकाशित किए हैं। उनकी एक पुस्तक हिमाचल गौरव भी इस विषय पर प्रकाशित हुई है।

(6) कुल्लुवी—यह वर्तमान कुल्लू की उपभाषा है। इस उपभाषा पर डॉ० पद्मचन्द्र कश्यप और श्री मोलूराम ठाकुर ने अनुसंधानात्मक पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

(7) किन्नौरी—जिला किन्नौर की लोक भाषा है। लोक-साहित्य पर डॉ० बंशीराम ने अनुसंधान किया है।

(8) लाहौली और स्पिति—दोनों लाहौल स्पिति की लोक भाषाएं हैं। उपर्युक्त लोक भाषाओं को पहाड़ी के संदर्भ में उपभाषा का स्थान दिया गया है और इनकी अनेक बोलियां और उपबोलियां भी हैं जिनके नाम ब्रिटिश काल में स्थानीय रियासतों के नामों के साथ जोड़ दिए गए थे। परन्तु अब उन नामों की अधिक मान्यता और महत्व नहीं रह गया है क्योंकि वे अवधानिक और निराधार

थे। इसलिए इन आठ उपभाषाओं को ही पहाड़ी भाषा का प्रमुख रूप समझा जाना चाहिए।

अब पहाड़ी हिमाचली, देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। लोक कविता, लोक-गीतों कथागीतों, लोक-कथाओं के रूप में यह पहाड़ी युगों के थपेड़े झेलती हुई वर्तमान रूप धारण कर रही है। पहाड़ी पर संस्कृत और हिन्दी का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। पहाड़ी और हिन्दी का परस्पर कोई विरोध नहीं। स्वतन्त्रता के बाद पहाड़ी भाषा की अनेक बोलियों को परस्पर निकट आने का सुनहरी मौका मिला है और इसमें जनता के साथ साथ सरकार ने भी पहाड़ी भाषा के संरक्षण के लिए प्रचुर योगदान दिया है। अभी तक पहाड़ी भाषा और लोक-साहित्य पर दो सौ से भी अधिक पुस्तकें पहाड़ी, हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुकी हैं। इस दिशा में अनुसंधानकर्ता लोक वार्ता प्रेमियों एवं लोक-साहित्य के मर्मज्ञों को खोज करने के लिए विशाल क्षेत्र अछूता पड़ा है। लोकवार्ता के अनेक पक्ष अभी तक अछूते पड़े हैं। यहां की समृद्ध लोक-संस्कृति, लोक-कथा और लोक जीवन पर अभी तक बहुत कम लिखा गया है।

कोई भी भाषा, कला एवं संस्कृति केवल राजकीय आश्रय पर प्रोत्साहन से जीवित या विकसित नहीं होती जब तक जन मानस बुद्धिजीवी और कलाकार लोक जीवन में इनका महत्त्व समझते हुए सक्रिय सहयोग एवं नेतृत्व प्रदान करने के लिए आगे नहीं आते।

अतीत में कला, संस्कृति और साहित्य की विभिन्न परिस्थितियों में विविध रूप धारण करते हुए, समयानुसार उन्नति की ओर अग्रसर होते चल आ रही हैं, निश्चयपूर्वक यह कहना कठिन है किस क्षेत्र में सबसे अधिक सफलता मिलेगी। रचना कोई भी हो कलाकृति कोई भी हो, नवीन होने के कारण कुछ काल तक जनरुचि को आकर्षित करने वाली बन जाती है। परन्तु साहित्य एवं कला के महत्त्व पर हरेक का स्थाई प्रभाव नहीं पड़ता। नाम और शब्दों का हेर फेर तो बाह्य रूप में जो सदा परिवर्तनशील होने के कारण अस्थाई है। स्थाई होने वाला तो आभ्यान्तरिक तत्त्व है जो साहित्य और कला को चिरस्थाई बनाता है। यह शाश्वत तत्त्व है जीवन की परख जो कलाकार बाह्य आडम्बर के आवरणों के भेद अन्तर्निहित जीवन सत्य का संधान करने में समर्थ होता है, उसकी कृतियां अमरत्व प्राप्त कर जाती हैं। जिस कृति में जिसकी दृष्टि जितनी ही व्यापक और तीक्ष्ण होगी वह कलाकृति या साहित्य उतना ही चिरजीवी बनेगा। मेरे यह विनम्र विचार कहां तक हिमाचल के बुद्धिजीवियों के परीक्षण और मनन की अपेक्षा रखते हैं यह भविष्य ही बता सकेगा।

लोक मनोरजन

जसे असख्य नदी नाले और जलधाराए अन्तत सागर म मिल जाती हैं, उसी प्रकार सस्कृति भी किसी जाति या देश की सारी विचारधाराआ भावनाओ मान्यताआ रीति रिवाजो आदि का समूह होती है। सस्कृति मानव को एक एसा दष्टिकोण प्रदान करती है जिससे सम्वधित समुदाय जीवन की समस्याओ पर दष्टि निक्षेप करता है। प्रत्येक जातीय आत्मा की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति सस्कृति कहलाती है। इसी से लोक जीवन मे रस आनन्द रग और प्रकाश का सचार होता है।

श्री अरविन्द ने जातीय सस्कृति का स्वरूप समझाते हुए एक स्थान पर लिखा है साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि किसी जाति की सस्कृति उसी की जीवन विषयक चेतना की अभिव्यक्ति होती है और वह चेतना अपने स्वय को तीन रूपो मे प्रकट करती है। उसका एक रूप है विचार आदश उध्वगामी सकल्प और आत्मा की आकाक्षा। दूसरा स्वरूप है सजनशील आत्माभिव्यक्ति की शक्ति और गुणग्राही सौन्दयबोध का, मेधा और कल्पना का। इसका तीसरा स्वरूप है व्यवहारपरक और बाह्यरूप सघटन का। य तीनो स्वरूप हिमाचल प्रदेश के सास्कृतिक परिवेश म भी प्रचुर मात्रा म विद्यमान हैं।

यदि हिमाचली लोक-सस्कृति की सम्पूर्ण कहानी देखनी है, तो इसका व्यावहारिक रूप देखना है, तो वह पहाडी लोगो के जन जीवन और इतिहास में उपलब्ध होगा विशेषकर यहा के श्रेष्ठ लोकगीतो लोकनृत्यो मिथको पौराणिक कथाआ चित्रकला, वस्तुकला लोकोक्तियो, लोक-कथाओ लोक विश्वासो लोक परम्पराओ लोक वार्ताओ रीति रिवाजो, प्राचीन स्मतियो म। जीवन दष्टिकोण, पारिवारिक धार्मिक और सामाजिक जीवन का सारा सतरगी ताना-बाना हिमाचल प्रदेश की लोक-सस्कृति की रूपरेखा बनता चला गया है।'

हिमाचल प्रदेश की कुल जनसख्या का 95 प्रतिशत भाग 18 000 ग्रामो मे बसता है। इसलिए यहा की मुख्य सास्कृतिक धारा ग्राम्य-सस्कृति है उसे जाने या समझे बिना हिमाचल लोक-सस्कृति म जो श्रेष्ठ है उसका सरक्षण होना चाहिए ताकि भारतीय सस्कृति की जीवनदायिनी धारा प्रवाहित होती रहे।

क्षेत्रीय या आचलिक जन-जीवन की पद्धति और उसके गुणो का समूह या प्रेरक शक्ति ही हिमाचल की सस्कृति कही जा सकती है। हिमाचनवासी आत्मिक विकास की जिन जिन श्रेणियो से गुजरे हैं, एसे ही अनेक सस्कारो की विरासत उन्हें सस्कृति की श्रेष्ठता प्रदान करती गई है। सस्कृति ने देशकाल और अवस्था के भेद से इसे अपनी विशिष्ट जीवन दृष्टि दी है।

यदि मनुष्य जीवन म मनोरजन न होता तो उसका सारा जीवन नीरस और सूखा हो जाता। जीवन मे उसके लिए न कोई आनन्द होता और न आकर्षण। रस स्वाद और रुचियो के विकास म परिवार, परिवेश शिक्षा परम्परा और सबसे बढकर लोकसस्कृति का प्रभाव रहता है। अनक परिवारों और समाजो म सुरुचि, सज्जा स्वच्छता मनोरजन, सलीका व शऊर आदि पर यथोचित स्थान दिया जाता है। कही गाने-बजाने का प्रचलन और शौक होता है। इनसे मनुष्य का प्रभावित होना सहज है। हिमाचली परिवारो मे गाने बजाने नाचने सजाने, परिवार उत्सवो, शिशुओ के विनोद की पुरानी परम्पराए हैं। स्पष्टत भौगोलिक या एतिहासिक प्रभावो का मनोरजन की रुचियो पर भी प्रभाव पडता है। मनोरजन म रुचि की सास्कृतिक भिन्नताए हैं।

इनके अतिरिक्त, व्यक्तिगत भिन्नताए भी हैं। आनन्द चेतना का विकास बुद्धि के ऊपर भी निर्भर करता है।

रस भारतीय विचार म सार के रूप मे व्याप्त हैं। दशन और आध्यात्मिकता म ब्रह्मन आदि विविध नाट्य रूपो म, सगीत को प्रधानता देकर जीवन के सभी सामाजिक क्षेत्रो म रस को मान्यता दी गई है। भक्ति भी हमारे लिए रस है। यहा रस का विवचन हम अभीष्ट नही। रस मन का भाव है।

जीवन म हम भाव स भर कर—भक्ति होकर काम क्रोध, शोक भय घृणा जुगुप्सा उत्साह आदि का अनुभव करत है। यह मनुष्य का सहज स्वभाव है। इन्ही के बल से व्यवहार चलता है। किन्तु जीवन म उसको ताजगी विश्रान्ति, विनोद विराम रजन के लिए भी क्षण आते हैं। तभी हम मन के बन्धनो व सीमाओ स ऊपर उठकर अपने मे रम जाना चाहते हैं। कला इन्ही क्षणो के लिए है।

कला अपन इशारो व प्रतीको की भाषा म मन को उत्तेजना व उत्ताप नही देती बल्कि उन्हे शान्त करके भावो का उद्रेक करती है जीवन को जगाती है प्राणो को स्फूर्ति देती है आश्चय व आनन्द स तन मन के अन्तराल को पूरा कर देती है, बुद्धि व कल्पना के लिए नई दिशाए खोलकर उनम नूतन ज्योति का विस्तार करती है। इस विशाल और आनन्दमय अनुभव को जो और अनुभवो से भिन्न है रस कहा गया है।

जब हिमाचल म कही भी चलचित्रो और आधुनिक मनोरजन के साधनो का

दूसरे एसे लोक उत्सव जो किसी एतिहासिक वीर पुरुष घटना जाति या धर्म के प्रति की गई सेवा की स्मृति रूप है। एस लोकोत्सवों द्वारा सास्कृतिक चेतना और मनोरंजन दोनो उद्देश्यो की पूर्ति होती है। हिमाचल प्रदेश म लवी मला गूगा नवमी, 15 अप्रल, पहली नवम्बर 25 26 जनवरी गाधी जयन्ती वाल दिवस राष्ट्रीय एकता सप्ताह परमार जयन्ती एस लोकोत्सव हैं जिनम स्मरण क साथ साथ मनोरंजन के अवसर भी प्रदान होत हैं।

हिमाचल प्रदेश म अधिक सख्या म एस लोकोत्सवो की भी हैं जिनका सीधा सम्ब ध ऋतुचक्र और कृषि सम्बन्धी कायकलापो स है। ऐस लोकोत्सवो क आधार पर आन वाली ऋतु का स्वागत किया जाता है और कृषि तथा पशु सम्बन्धी विधि विधान किया जाता है। हिमाचल प्रदेश म होली वसन्त उत्सव दीपावली बशाखी, विशु रिहाली और मल एस ही उत्सव हैं जिनम ऋतुगीतो एव लोक नृत्यो क साथ साथ लोक मनोरंजन भी होता है। एस उत्सवो को स्थानीय देवी देवताओ स भी जा जोड दिया गया है। उन्हें पालकी म बिठाकर नाचत गात लोग मला क मदान म जी भर कर मनोरंजन करत हैं। शिमला क्षत्र म महासु र देवता सावन भादों म गावो गावो घूमकर अपनी प्रजा की खेती व पशुओं की बीमारियो की रोकथाम करता है।

चौथ एसे भी लोक उत्सव होत है जो किसी विशष कारण या घटना के होत हुए प्राय मनोरंजन क लिए प्रारम्भ किए गए है। इनम किसी सुदूर अतीत की किसी घटना का स्मृति म मनाये जात हैं। इस प्रकार के उत्सव महज जीवन की कठोरताओ को कुछ क्षणो के लिए भुला देत है। अनक आदिवासी जातियो क एसे उत्सव हैं जो प्राय आज भी मनाय जाते हैं जिनम मनोरंजन की प्रधानता है। चम्बा की लोहडी विवाहोत्सव के अवसर पर होन वाले लोकनृत्य, मुजरा एव लोकगीत किसी जनकल्याण योजना क प्रारम्भ या सफलतापूवक पूर्ति पाठशाला एव महाविद्यालय स्तर के क्षत्रीय एव राज्योत्सव सभी ऐसे उत्सव होत हैं, जिनम मनोरंजन भी होता है, प्रतियोगिता का रूप भी होता है और शिक्षा भी।

गाव गाव म सजन वाल मले, उत्सव सक्राति बलो और झोटो की लडाई मल्लयुद्ध छिज नलवाडी मेले, एसे असख्य उत्सव है जो लोक मनोरंजन क प्रमुख साधन हैं।

लोक मनोरंजन के साधनो म खल कूद का भी हिमाचल क सास्कृतिक जीवन म महत्वपूण स्थान है। इन खेलो म मल्ल युद्ध, शतरज गुलीडडा कबड्डी जुआ इन्द्रजाल झोटो की लडाई बलो की लडाई मढों की लडाई मुर्गों की लडाई, ठोडे का खल कपडे की गेंद बनाकर खेलना इत्यादि ऐसे मनोरंजन हैं जिनका हिमाचल ने ग्राम्य जीवन में विशष

पंजा मारना, पंजा लड़ाना, लंगडी मारना, मुर्गा लड़ाई लुकछिपना इत्यादि भी गिने जा सकते हैं।

हिमाचल प्रदेश में कई जगहों पर पकाई मिट्टी के बनाए गए चित्ताकर्षक खिलौने, पूजा के लिए बनाई गई मूर्तियां लाहौल और स्पिति में बौद्ध लोगों द्वारा बनाई गई अधउभरी टेरा कोटा प्रतिमाएं—ये सब रचनायें पहाड़ी लोक-जीवन के कला पक्ष को उजागर करती है और उपादेयता के साथ साथ मनोरंजन भी।

हिमाचल में ग्रामीण महिलायें हरितालिका तृतीया के अवसर पर पूजा के लिए मिट्टी की प्रतिमाएं बनाती हैं। अहोई अष्टमी के अवसर पर स्त्रियां अहोई माता का चित्र दीवार पर अंकित करती है। दिवाली पर घर के मुख्य द्वार से लेकर पूजा मंडल तक पूरा रास्ता कलात्मक रूप से सजाया जाता है। इसी तरह नागपंचमी और शिवरात्रि के अवसर पर भी चित्रकारी एवं मूर्तिकला का लोक अनुरंजन के लिए प्रदर्शन होता है। अधिकांश पहाड़ी लोककथायें पहाड़ी जीवन के विविध संस्कारों, तिथि-त्यौहारों आदि से जुड़ी हुई हैं। इन अवसरों पर फर्श पर या दीवारों पर मांगलिक प्रतीक चित्रित किए जाते हैं जिनके लिए पिसा हुआ चावल, गेहूं का आटा, सूखे रंगरोली, गेरु हल्दी आदि से काम चल जाता है।

जीवन के कलात्मक अथवा रसात्मक का पक्ष-सम्बन्ध मन या हृदय से है। मन को रुचिकर लगने वाले पदार्थों को अमर रूप देने के लिए चित्रकला, मूर्तिकला वास्तुकला आदि का प्रादुर्भाव हुआ है, और मन को आनन्द देने वाली स्वरलहरी को संगीत में प्रतिष्ठा मिली है। सृष्टि में जो कुछ मनोरम और आनन्ददायक प्रतीत हुआ, वह मनोरंजन का साधन भी बना और शिक्षा का भी।

लोक जीवन की परम्परागत वाणी को लोक-साहित्य यदि कहें तो लोक-कथा उसकी धारा विशेष है। *यह धारा अन्तहीन है इसलिए लोक कथाएं भी अन्तहीन* हैं। लोक-कथाएं श्रव्य और दृश्य दोनों तरह के रूप ले सकती हैं। लिखित भाषा का माध्यम जब नहीं था तब श्रव्य साहित्य की इस परम्परा ने ही मानव के बढ़ते हुए ज्ञान की रक्षा की और आवश्यकता के अनुसार उसके लिए समय-समय पर हर मनोरंजन के भी साधन जुटाए।

लोक-कथाओं की परम्पराओं ने कालान्तर में दो रूप लिए। एक रूप वह था जो कि जीवन की गहराइयों को अधिक भाता है। इसमें इतिहास पुराण, धर्म और दर्शन ग्रंथों में प्रवेश पाया। दूसरा रूप वह था जो कि जीवन की पार्थिवता को पंख लगाकर ऊपर उठाता है। इसका अल्पांश तो लिखित स्थायी साहित्य में आ गया परन्तु अधिकांश श्रुति परम्परा में ही रचित है।

श्रुति परम्परा की लोक कथाएं एक बूढ़े दादा, दादी नाना, नानी के जीभ, कान होती हुई पारिवारिक जीवन में सुरक्षित रूप में चलती रहीं और दूसरी ओर समाज के वर्ग विशेष की रखवाली में अटूट रहीं। इस प्रकार के वर्ग विशेष

हिमाचल लोक-नृत्य-परम्परा

शाली बाजारों दी चिकनी माटी,
बठी जा भौहि्दी शुणि ल नाटी।

—लोकगीत

व्यक्ति या समूह का अपने देश से सम्बन्ध कुछ एसा होता है जसा उसका अपनेपन तथा अपने माता पिता स। जिसकी गोद मे बठकर व्यक्ति या व्यक्ति-समूह विकसित होता है। उससे उसका सहज स्नेह हो जाना स्वाभाविक है। इस प्रसग म आदि कवि बाल्मीकि की यह पक्ति साथक है—'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गा दपि गरीयसी,—अपनी मा, अपन जन्म-ग्राम अपने घर और अपने पडोस के माध्यम से ही हम अपने प्रदेश या देश को पहचान सकत हैं। उनके प्रति प्यार से ही हम देश भक्ति की ओर अग्रसर होत है। हम अपने निकटस्थ वातावरण स ही समूचे क्षेत्र या दश के भूगोल इतिहास कला और लोक जीवन के प्रति रुचि शील हो जात हैं। अपने क्षत्र के विगत उसकी श्रेष्ठ परम्पराओ उसक उज्वल और उत्कृष्ट सास्कृतिक पक्षो और उसकी जीवन विधि एव रीति-नीति की जान कारी देशभक्ति का सवधन होता है।

आज भी जिस देश मे कला का लोक जीवन से गहरा सम्पर्क बना हुआ है वहा के लोक नत्य एव लोक गीत वहा की सस्कृति के सच्चे प्रतीक है। यही लोक नत्य जब लोक जीवन के सम्पक को खो बठते हैं और उनका लोकरजनात्मक गुण कम होने लगता है तो वे कुछ ही लोगो की सम्पत्ति बन जाते है। भारत के प्रसिद्ध लोक-साहित्यकार एव लोक कलाकारो क निर्देशक देवीलाल सामर क शब्दो म—उनमे धीर धीरे शास्त्रीयत्व का समावेश होने लगता है और वे एक विशष कला त्मक रूप धारण कर लेते हैं। प्रत्येक देश की शास्त्रीय कलाओ का यही इतिहास है। जिस प्रकार भाषा अपना प्रारम्भिक और लौकिक रूप खोकर कुछ ही पडितो और आचार्यों के प्रयत्नो स क्लिष्ट और साहित्यिक बन जाती है उसी प्रकार लोक-नत्य भी कुछ विशषज्ञो के प्रयास से शास्त्रीय नत्यो का रूप धारण कर लेत हैं। इसस यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक शास्त्रीय कला की जननी लोककला

है अत यदि हम अपनी लोक-सस्कृति को जीवित रखना है तो इन लोक कलाओ को जीवित रखना अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि उनम जनता के प्राणो का सच्चा स्पन्दन है।

हिमाचल प्रदेश जैसे दुगम पहाडी क्षेत्र म जहा जीवनोपाजन अत्यन्त कठिन है। लोक रजन क साधन सरलता मे उपलब्ध नही लोक कलाओ के अनेक रूप अभी तक मूल रगीन, सपन्न और समद्ध रूप म विद्यमान हैं। हिमाचल प्रदेश क सभी लोक-नत्य व्यावसायिक नत्य न होकर जातीय नत्य हैं। इसलिए इनम लौकिक और सास्कृतिक पक्ष अधिक है। इनमे आज भी यहा के पवतीय जीवन की आत्मा का निवास है।

यहा के लोक जीवन की सादगी आनन्दानुभूति तल्लीनता तन्मयता, दक्ष शारीरिक अभ्यास का अपूव परिचय मिलता है। जयशकर प्रसाद ने एक जगह भारतीय कृषक का सजीव चित्र इन पक्तियो मे खीचा था—

कठिन जेठ की दोपहरी मे तप्त धूलि मे सन।
कृषक तपस्वी तप करते ह तप से स्वेदित तन॥

हिमाचल वासियो का ग्राम्य जीवन भी इतना कठिन, कठोर और रूक्ष है। फिर भी यहा के परिश्रमी पहाडी लोग अपन सुमधुर लोक गीतो और लोक नत्यो द्वारा मुरझाये हुए प्राण स्रोत का हिमालय की गोद म अठखेलिया करती हुइ पावन गगा मया की धारा समान उल्लासमय और नन्दनव के कल्प वक्ष की तरह सब ओर सुख और आनन्द बिखेरते हैं।

हिमाचल प्रदेश म अतीत गौरव के प्रतीक लोक-नत्य किसी ग्राम्य उत्सव क समय प्राय अपन पुरानेपन मे भी सौंदय को समोये मानव मन को आनन्दित एव आत्मर्पित किए रहते हैं। उनका मूल उद्देश्य सामूहिक मनोरजन है और लोक मगल की भावना है। लोक नत्यो का मूल स्रोत हमारी लोक सस्कृति है जिसे स्थान और काल की दूरी भी छिन्न भिन्न नही कर सकती। इस पहाडी प्रदेश क लोक नत्य की अन्तरात्मा मे मानव की सौन्य बोधि चेतना पवतीय लोक जीवन क ह्रास और रुदन की स्वस्थ कला परम्परा, जन मन की उमगें प्रकृति का रग वभव यहा का ग्राम जीवन सघष और श्रम और मन की बधन मुक्त उडान प्रतिबिम्बित होती है।

प्रकृति समान सरल हिमाचल के युवक और युवतिया बाल्यकाल से ही जसा वह वद्धो को करते देखते हैं उसी परिपाटी को अपने स्वभाव मे सम्मिलित कर लेत है। इसी तरह एक पीढी स दूसरी पीढी तक हिमाचल के लोक-नत्य आगे बढ़ते रहे हैं और उनमें समय समय पर परिवतन, सशोधन और रोचकता का विकास होता रहा है। चूकि हिमाचल के लोक-नत्य किसी विशेष शास्त्रीय नियम

से बंधे हुए नहीं हैं, इसलिए वे अत्यन्त सरल, सरस और हृदयग्राही हैं। पर फिर भी उनकी विशिष्ट परम्परा है। इन लोक-नृत्यों में, पर्वतीय लोक-जीवन के उद्गम स्वभाव गति की तीव्रता अंग-संचालन में एक आकस्मिकता, कठोर मुद्रा छोटे छोटे आवेशपूर्ण नृत्य खंडों का रूप अपने में पहाड़ी जीवन की प्राकृतिक शोभा, धार्मिक सामाजिक तथा अनेक रूढ़िवादी संस्कारों और विश्वासों की सुन्दर झलक मिलती है। हिमाचल के अधिकांश लोक-नृत्य सामूहिक उल्लास सुख दुख के भावपूर्ण क्षण और सामाजिक अवसरों से ही सम्बन्धित हैं। चाहे कोई लोक-नृत्य ऋतु उत्सव के सम्बन्ध में हो या धार्मिक और सामाजिक उत्सव के रूप में, आसपास के सभी पर्वतीय ग्रामों के लोग उसमें ठाठ-बाट के साथ सम्मिलित होते हैं। यहां के लोक-नृत्य व्यक्तिगत कला विकास के साधन मात्र नहीं।

हिमाचली लोक-नृत्यों के साथ गीत इन्हें चार चांद लगा देते हैं। निःसन्देह लोक-नृत्य और गीत का जन्म साथ-साथ संघर्ष श्रम साधनों के अवसर पर दिखाई जाने वाली भावमयी मुद्राओं के उन चरम क्षणों में हुआ जब जीवन का सौंदर्य जाग उठा और गीत फूट पड़े। चिरकाल से उदय और प्रयोजन के कारण हिमाचल के लोक-नृत्य गीत अभिन्न अंग रहे हैं और पर्वतीय सामाजिक जीवन को सचित्र, सजीव और प्रेरणात्मक बनाते हुए, ये लोक-नृत्य लोकगीतों से विभूषित हैं। इनका सरल प्रवाहमान संगीत नृत्य को चाल-लय की कला-सौष्ठव प्रदान करता है। हृदय आकाश में सप्तरंगी इन्द्रधनुष का वितान फैल जाता है नेत्र आनंद विभोर हो उठते हैं। मन मोर नाच उठते हैं और मानव की सहज अभिव्यक्ति मधु और अमृत के गीत गाने लगती है। वास्तव में लोक-जीवन की प्रत्येक दिशा नृत्य से व्याप्त है।

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रायः विभिन्न लोक-नृत्य प्रचलित हैं। इसी प्रकार लोक-नृत्य के साथ गाये जाने वाले लोकगीत और वेशभूषा भी विभिन्न होते हैं। इनमें से कुछ नृत्यों में केवल स्त्रियां और कुछ में केवल पुरुष ही नाचते हैं। परन्तु ऐसे भी लोक नृत्य हैं जिनमें केवल स्त्री-पुरुष दोनों ही नाचते हैं। इनमें अधिकतर सामूहिक-नृत्य हैं परन्तु कुछ व्यक्तिगत नृत्य भी हैं। प्रायः सभी लोक-नृत्यों के साथ नृत्य गीत गाये जाते हैं इन लोक गीतों को बहुधा स्वयं नर्तक दल गाते हैं। प्रत्येक लोक गीत के साथ वाद्य नरसिंगा शहनाई ढोल बांसुरी करनाल खंजरी करताल डमरू इत्यादि बजाए जाते हैं। यदि अन्य लोक-वाद्य न भी हों ढोलक या खंजरी के बिना गुजारा नहीं है। ये लोक गीत लोक-वाद्य एवं लोक-नृत्य की त्रिवेणी इस पर्वतीय प्रदेश में अनन्तकाल से प्रवाहित होती रही है।

यदि आप कभी वर्ष भर में जुड़ने वाले अनेक मेलों उत्सवों या त्यौहारों के

समय हिमाचल के किसी ग्राम म स होकर गुजर रहे हो, तो सहसा ढोलक या खजरी की मधुर ध्वनि सुनकर आप स्थानीय ग्रामवासियो को गाव की किसी खुली जगह पर एकत्रित पाएग और लोक-नृत्य का आनन्द उठाते हुए देखेंगे। पहाडो क इन छोटे छोटे ग्रामो मे पहाडी लोक-कला की इस रसभरी समृद्ध थाती को अपने प्राचीन रूप एव वैभव म सुरक्षित पाएग। इन लोक-नृत्यो की भावना भत हरि लोक गीत में कितने सुदर ढग स प्रस्तुत हुई है।

लागी साधु री किन्दरी लागी ऐ किन्दरी री बाई,
आमा बोलो ली बुढडो ब, मुन्दी नाचण री आई।
एकि तारी री किन्दरी बोलो स नोखी नोग्री बानी,
नाचो लहोडल बौडल साथी स चौदोशो रानी।

इन लोक नृत्यो क साथ गाय जाने वाली प्रत्येक नृत्य गीत की भाषा, शैली, छन्द, धुन, लय इत्यादि म भी भिन्नता है।

शुभ अवसर त्योहार और अनेक सामाजिक मल मिलाप के हर्षोत्सवो को मनाने के लिए लोक-नृत्यो की विशेष भूमिका होती है इसके लिए कोई पूर्व अभ्यास की आवश्यकता नही। क्षणिक प्ररणा पर भी हिमाचली नाचना पसन्द करते हैं। इन परम्परागत और मनोहारी लोक-नृत्यो को देख प्रत्येक दशक पर इनके लय, सौन्दय भावना की महानता प्रकट होती है।

जब हिमाचल म जहा भी चलचित्रो और आधुनिक मनोरजन के साधनो का नाम निशान भी नही था तब भी यह चित्ताकर्षक लोक-नृत्य लोक-जीवन को सरस बनाते रहे और साधारण लय ताल और गीतो के द्वारा लोक-नृत्य और लोक गीत पवत पुत्रो के दैनिक परिश्रम और रूखे जीवन म उत्साह और रग भरते रहे हैं। वनो पहाडों खेतो खलिहानो और आगन म दिनभर के कठिन काय के पश्चात स्त्री पुरुप गाव के खुले स्थान पर एकत्र होकर लोक नृत्य द्वारा अपने दैनिक जीवन की कठोरता और करुणा को भुलाते रहे हैं। यह कायक्रम उत्सवो को छोडकर प्राय सदियो म अधिक चलता है। परन्तु ज्यो ज्यों शिक्षा का प्रसार बढा और सिनेमा, रेडियो और अन्य मनोरजन क साधन गाव गाव म पहुचने लगे, इस ओर से नई पीढी का ध्यान धीरे धीरे हटता जा रहा है। उन पर आधुनिकता का आवरण चढता जा रहा है। लोक-जीवन की श्रेष्ठ थाती के प्रति उनकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया हीनभावना और लज्जा की ही होती है। इसका कारण शायद शिक्षित वग एव नगर की सभ्यता स प्रभावित वग की यह धारणा है कि लोक-नतक पिछडे एव आदिवासी लोगो की आदिम सभ्यता का चिह्न है। ज्यो ज्यो सभ्यता एव सस्कृति का विकास होता जाता है, लोक जीवन

का यह आकर्षण भी विस्मति क गत म चला जाता है।

हिमाचल क लोक-नत्यो का आधार, यहा की प्रकृति से गहरा सम्बन्ध होने क कारण उनक लोक-नत्य प्रकृति के अनुरूप ही सुन्दर हैं जिनम विविधता और रग का वभव प्रदर्शित होता है। इनक द्वारा लोक जीवन की आतरिक भावनाओ और स्वभाव की अत्यन्त मनोहर झलक मिलती है। फलत निपुणता क स्वतन्त्र आविर्भाव का अवसर मिलता है जिसके द्वारा ग्राम्य समुदाय को सामूहिक आनद का आभास होता है। इसी कारण हिमाचल क लोक नत्य शहरी जीवन क अभाव म दूर रह पाये हैं।

शिमला के लोक नत्य

जब लोकवादक अपन विशेष वाद्यो पर मधुर ध्वनि की गूज बिखरत हैं तो युवक हो या वद्ध सब एक-दूसर का हाथ पकडकर गोलाकार नृत्य आरम्भ करत हैं। नत्य लोक-वाद्यो और लोक-नत्यो की ताल पर तीव्र और उग्र हो जाता है। यह मालूम करना कठिन हो जाता है कि कब इसका समय पूरा हो गया और इसम श्रेष्ठ नतक कौन है। दक्ष नतक के नेतत्व म नतक दल दायी दिशा म ताल पर पग बढ़ाता है। कभी छोट कदम, कभी बडे, कभी उछाल कभी धीमी चाल,

कभी आगे, कभी पीछे झुकना, कभी दौड और कभी छलागें, कभी घुटने झुकाकर कभी कभी कैंची से कदम, इसी प्रकार नर्तक चलता रहता है। कई बार जब कोई दक्ष लोक-गायक या लोक वादक नही होता तब नतक दल स्वय ही लोक गीत गाता हुआ नाचता है, दो या तीन नतक या गायक आरम्भ मे गाते हैं और शेष सब बाद मे उन गीतो की पक्तियो को दोहरात हैं। प्राय सभी लोक-नत्य विलम्बित लय से शुरू होकर द्रुत-लय पर समाप्त हो जात हैं। ऐसे अवसरो पर प्राय नृत्य, गीत की गूज सहसा वायुमण्डल म बिखर जाती है और एक अद्भुत वातावरण की रचना हो जाती है। बासुरी की मधुर लय से लोक-नत्य आरम्भ होता है—

कृष्ण जोए मुरली बाजि
मुरली बाजि, मुरली बाजि
मुरली शुणियों नाचदे आजि
नाचद आज नाचद आजि

एस ही लोक-नृत्य गीतो की लय के साथ नतक दल शरीर के विभिन्न अगो का सचालन करत हुए कदम से कदम मिलाकर मस्त होकर नत्य करते है। नतक दल अपने क्षेत्र म प्रचलित सभी प्रकार के लोकप्रिय लोक-नत्य का प्रदशन करत हैं। परन्तु यह प्राय दक्ष नतक एव लोकप्रिय वाद्य के वादक पर निभर करता है। लोग प्राय जब इस प्रकार के नत्य शली स उब जाते हैं तो कुछ देर बाद, दूसरा नत्यगीत आरम्भ हो जाता है—

खेलादि आजे मेरी भावरूपीए ओ भावरूपीये ओ।
कोखे र खौल मेरी भावरूपीये, भावरूपीये ओ॥
भाटो र खोलर मेरी भावरूपीए, भावरूपीए ओ।
जोगडू शौल मेरी भावरूपीए, भावरूपीए ओ॥

और नत्य गीत के अनुरूप ही नत्य शली मे भी परिवतन आ जाता है।

और तीसरे लोकगीत की सुमधुर ताल और लय क साथ जब लोक-वाद्य बजते हैं तो लोक-नत्य अपने पूरे जीवन पर आ जाता है—

लच्छी बडी सूरता वाली, तू मेरे कन्ने वोल लच्छिये।
हाय वो पियारिये हाय वो दुलारिये
पतली कमर झुकी जादी, तू छोटा घडा चुक लच्छिए
हाय वो पियारिये, हाय वो दुलारिये

लोक-नृत्य को तीव्र गति देने के लिए तीव्र ताल पर लोक-गीत गाया जाता है। जैसे—

> लाल चोडिए सेरे न जाणा, सेर न जाणा
> सेरे पाका मेर गेहू रा दाणा, गेहू रा दाणा
> गेहू रा दाणा घरे ले आणा घर ले आणा
> गेहू रा दाणा जादा नी खाणा, जादा नी खाणा

इन सुमधुर नृत्य गीतो से स्थानीय लोगो को अपने ग्राम, पहाडो, वनो खेतो खलिहानो नदी नालो झीलो झरनो देवी-देवताओ, वीरो, पूर्वजो सुन्दर और निष्ठुर प्रेमी प्रेमिकाओ के प्रति अनुरक्ति टपकती है और नर्तक दल भाव विभोर होकर झूम-झूम जाते हैं। मीठे और सुरीले कण्ठो से गाए जाने वाले लोक गीतो के साथ जब लोक वाद्य बजने लगता है तो नर्तक दल ही नही, देवी-देवता भी पालकियो म नाचने लगते हैं और दर्शकगण आत्मविभोर होकर तन्मयता से इनका आनन्द उठाते हैं।

मानव इतिहास म यह स्पष्ट होता है कि प्राय सभी प्राचीन सभ्यताओं म प्रत्येक धार्मिक एव सामाजिक उत्सवो म नृत्य का महत्त्वपूर्ण स्थान होता था। नृत्य एक प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान बन गया था। चूकि उन दिनो सामूहिक जीवन म धर्म की महान् भूमिका रही इसलिए नृत्य भी राष्ट्रीय जीवन का विशेष अग रहा है। प्राचीन भारत म नृत्य भगवान शिव नटराज की देन समझा जाता रहा है। परम्परा के अनुसार शिव और पार्वती ने नृत्य की दो महान शाखाओ ताण्डव एव लास्य का सचार किया और सत महात्माओ को शान्ति प्रदान की।

हिमाचल प्रदेश की सस्कृति एव कला परम्परा को भी एक प्रदेश विशेष की सस्कृति एव कला के रूप म देखना उसकी महान् गौरवशाली परम्परा का अपमान करना है। हिमाचल की कला-परम्परा का नि सन्देह शेष भारत से गहरा सम्पर्क रहा है और उसे आत्मसात किया है। समय के थपेडो ने इन्हें बरबाद करने के लिए कोई कसर शेष नही रखी परन्तु फिर भी जीवित रह सकी है, तो एक बात स्पष्ट है कि इसकी नींव सुदृढ है और लोक जीवन से इसका अटूट सम्पर्क सदव बना रहा है।

स्वतन्त्रता-उपरान्त हिमाचल प्रदेश म लोक-परम्परा को सुरक्षित रखने की दिशा म कुछ कदम उठाए गए हैं। जसे प्रत्येक राष्ट्रीय एव स्थानीय मेला-उत्सवो और युवा-उत्सवो म लोक-नृत्यो का प्रदर्शन एव सरकार द्वारा प्रोत्साहन। फिर भी लोक-नृत्य परम्परा को आज सुरक्षित रखने और उसे विकसित रूप देने की अधिक आवश्यकता है। राष्ट्रीय-जीवन म जो सुन्दर है, श्रेष्ठ है, उसकी उपेक्षा

नही की जानी चाहिए। उसको तो सरक्षण एव प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए, ताकि राष्ट्र को एकसूत्र म बाधने वाली यह परम्पराए सप्राण होकर राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ कर सकें।

—यस्या गायन्ति नत्यन्ति भूम्या मर्त्या व्यलबा,
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्या वदति दुन्दुभि ।
सानो भूमि प्रणदता सपत्नाम असपत्न,
मा पृथिवी कृणोतु ॥

—वेद

—जननी ! तेरे वीर पुत्र जब राष्ट्रगीत ह गाते
करते नृत्य मोद मदमाते उत्सव नित्य रचाते
विविध प्रात भाषा क भाषी लोक-लोक के वासी
रणभेरी सुन मातभूमि की रक्षाहित बलि जाते।

लोक-नत्य आत्मप्रेरणा से प्रस्फुटित हो लोकमानस की कल्पना और इच्छा स कलात्मक और भावात्मक रूप धारण कर जातीय एव राष्ट्रीय सस्कृति की आनन्दमयी किरणो से युगा-युगो से लोकजीवन क अधेरे कोनो को प्रकाशित करत रह हैं और करत रहग।

हिमाचल लोक-नृत्य परिचय

उर की अतप्त वासना उभर,
इस ढोल मजीरे के स्वर पर,
नाचती, गान के फना पर,
प्रिय जनगण को उत्सव अवसर।

—सुमित्रानन्दन पन्त

हिमाचल प्रदेश के हिमाच्छादित शिखरो, हरित वनो मखमली चारागाहो गाते हुए नदी-नाला हसत-खलत-नाचते पहाडी निवासियो के मध्य रहकर जो आत्मिक परितप्ति मिल सकती है वह अन्यत्र उपलब्ध नही। चिरकाल से इस पहाडी क्षेत्र के जनपद म जो नसर्गिक आनन्द शान्ति निष्कपटता, गरिमा और महिमा का छटा बरसती है उसमे आज भी कमी नही आई। गाव गाव के अपने देवी देवता लोक गीत लोक-वाद्य लोक-नत्य और लोक-परम्पराए धीरे धीरे मूल के महासागर मे बहत चले जा रहे हैं। इसी रस और रग से भरपूर थाली मे से कुछ प्रमुख लोक-नृत्यो का यहा परिचयात्मक स्वरूप प्रस्तुत करने की चेष्टा की जा रहा है।

वसे तो हिमाचल प्रदेश के किसी क्षेत्र के लोक-नत्य का गिनती की सीमा म नही बाधा जा सकता और न ही शास्त्रीय नत्यो की तरह इन्हें किसी विशष शली या नियमो के बन्धनों में जकडा जा सकता है। प्रधानत हिमाचल प्रदेश के लोक नत्यो की सख्या भी उतनी ही अधिक है जितने ग्राम समुदाय और कुछ लोक नृत्या का नामकरण भी ग्रामो के आधार पर हुआ है। जसे सागला नृत्य पगवाल नत्य इत्यादि। फिर भी प्रत्येक क्षेत्र म कुछ प्रकार के लोक-नृत्य अन्य की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय रहे हैं। ऐसे ही कुछ लोक-नत्यो का परिचय देने का प्रयत्न यहा किया गया है।

हिमाचल प्रदेश के लोक-नत्यो म भाग लेने वाले लोगो की सख्या की दष्टि से दो प्रकार के होते हैं।

(क) व्यक्तिगत नत्य—ऐसे लोक-नृत्यो म तुरिण और मुजरा गिने जा सकते

हैं। इन नृत्यो म एक या दो नतक नाचत हैं। लोकगायक श्रोता और दशक उनको घेरकर बठ जात हैं। लोकगायक गजरी, ढोलकी, गुज्जू, खडताल या हाथ की तालियो स लोक गीत की धुन और लय उठाते हैं और नतक धीरे धीरे उठकर चारो ओर घूम घूमकर अपने शरीर के हर अग को लोक-गीत की लय पर नचाता है। कभी-कभी बड लोक-गायको के दो दल होत हैं। एक दल लोक-गीत की पक्तियो को आरम्भ म गाता है, दूसरा दल उन्हें उसी ढग स दोहरा देना है। यह नृत्य गाव के छोटे उत्सवो पर प्राय रात को होते हैं। एस लोक-नत्यो का प्रचलन अधिकतर शिमला, सिरमौर, कुल्लू, सोलन तथा मण्डी के ग्रामीण क्षत्रो म है।

(ख) समूह लोक नत्य—एसे लोक-नत्यो का प्रदशन प्रत्येक बडे उत्सव, मेला पर होता है। यह प्रदेश के प्रत्येक भाग म और बाहर भी अधिक लोकप्रिय हैं। इन सामूहिक नत्यो का परिचय कुछ विस्तार से यहा दिया जा रहा है।

इन लोक-नत्यो का वर्गीकरण लिंग, जाति के आधार पर भी किया जा सकता है, जसे—

(क) महिला लोक-नत्य—लोक-नृत्यो म केवल स्त्रिया ही भाग लती हैं। इन लोक-नत्यो म हिमाचल के अनेक नृत्य गिने जा सकत ह। जस चम्बा के धुरेही, *भागी और घौडायी लोक-नत्य, लाहौल स्पिति का जोमे लोक-नत्य कुल्लू का* लालनी लोक-नत्य और शिमला का तुरिण नत्य और कागडा क्षेत्र के अनक लोक-नत्य गिने जा सकते है।

(ख) पुरुष लोक-नृत्य—ऐस लोक-नत्यो म केवल पुरुष ही नाचत हैं जसे सिरमौर और शिमला जनपदीय क्षेत्र के जोली, छट्टी घुगती ठाडा नत्य, कुल्लू के तलवार करथी हरण लोक नृत्य, लाहौल स्पिति का मक्र नत्य के नाम लिए जा सकते हैं।

(ग) मिश्रित लोक नत्य—हिमाचल प्रदेश मे ऐसे भी असख्य लोक-नत्य है जिनम स्त्री-पुरुष मिलकर नाचत हैं। इनम किन्नौर के अनेक लोक-नत्य, कुल्लू के नाटी, सागला पखा, चम्बा के गद्दी, पगवाल नत्य शिमला के नाटी, माला इत्यादि लोक नृत्य शामिल हैं।

इन लोक-नत्यो का वर्गीकरण अवसर के आधार पर भी किया जा सकता है, जस—

(क) धार्मिक लोक-नृत्य—धम हिमाचल प्रदेश की जनता के दैनिक जीवन का एक अग है। इसलिए लोक-नत्य म भी इसका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन लोक-नत्यो म कागडा क्षेत्र के रस, गुग्गा भगत नृत्य कुल्लू और शिमला क्षेत्र क देव मल नृत्य, चम्बा के सेन नत्य, *तथा लाहौल स्पिति के मक्र नृत्य शामिल हैं।*

(ख) सामाजिक धार्मिक नत्य—प्रत्येक समाज के अपन अपने मूल्य एव

सामाजिक परिवर्तन हो रहा है उसके कारण अन्य लोक मनोरंजन एवं परम्पराओं के साथ लोक-नृत्यों के स्वरूप, शैली और प्रदर्शन में भी परिवर्तन परिलक्षित होना स्वभाविक ही है। परन्तु इन लोक नृत्यों का रंग-वैभव, कला-सौष्ठव सौंदर्य बोध एवं रंगमंचीय प्रभाव आज भी उतना ही गहरा है जितना युगों पहले। इसलिए लोक-नृत्यों की शारीरिक एवं मानसिक आनन्द भावना मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए आवश्यक है।

किन्नौर के लोक-नृत्य

कहू किन्नरी किन्नरी ल बजाव,
सुरी आसुरी बासुरी गीत गाव,
कहू यक्षिणी पक्षिणी को पढाव,
नगी-कन्यका पन्नगी को नचाव।
—केशव (रामचन्द्रिका)

सबसे पहले हिमाचल के सीमावर्ती क्षेत्र किन्नौर को ही लीजिए। बर्फ से ढकी बास्पा, भाभा हग रग, कल्पा वादिया और अठारह बीश और पन्द्रह बीश क्षेत्र मिलाकर किन्नौर बना है। ऐसे कहा जाता है कि वर्तमान किन्नरवासी महाभारत काल के किन्नरो के वशज है। उनके कोकिल कठी सगीत और मनोहर लोक-नृत्यो का अपना विशेष स्थान है। गाव गाव मे यहा की जनता लोक-नृत्य द्वारा लोक मनोरजन करती है। किन्नौर की स्त्रिया को गहने पहनने का बहुत चाव है। यही गहने और पारम्परिक वेषभूषा पहनकर वे लोक-नृत्यो की शोभा बढाती हैं और पुरुषो को नाचने की प्रेरणा देती हैं। लोक गीत गाने और लोक नृत्यो के लिए कोई भी क्षण सुअवसर बन सकता है। किसी किन्नौरी लोक गीत म कितने सुदर ढग से कहा गया है—'खाको गियड रड कानार ऊ रड' अर्थात मुख मे गीत रहे और कान पर फूल—यही किन्नरी जीवन का एक आकर्षण है।

किन्नौर के लोक नृत्य

हिमाचल प्रदेश उत्तर पूर्व आचल म बसा जिला किन्नौर, ऊबड-खाबड उच्च एव भीमकाय बर्फीली पर्वतमालाओ स घिरा शतद्रू या सतलज के दोनो ओर फैला है। किन्नौर को यदि भौगोलिक दृष्टि स चार भागो म बाटा जाए तो उचित होगा। प्रथम, चित्ताकर्षक हरे भरे वनो स सजा, जिसे देखकर दिल उछलने लगता है ज्यूरी के कच्छम तक सतुलज क किनारे का भाग द्वितीय, कच्छम से चिकुतल और उस से आगे, भयावनी सडक, जो चट्टानो क बीच म स बास्पा नदी के किनारे देवदारु और बर्फीली चोटियो के साथ है तृतीय, कच्छम

से खास (11 000 फुट ऊंचाई) सतलुज नदी के किनार स्पिति नदी के सगम तक फैला है। यहा से प्राकृतिक दृश्य जीण शीण से लगता है और जहा वक्षा की कमी खटकने लगती है। चतुथ खण्ड म सन्दोह (11 800 फुट ऊंचाई) तक वाला भाग शुष्क है। इस क्षत्र म वक्ष तो क्या घास भी नहीं उगती। इस भाग म शीत लहर का प्रकोप अत्यत भयानक है।

समस्त किन्नौर की भूमि पर रग बिरग फूलो की छटा मनमोहक झरने गहरी वादियां ऊची ऊची चोटियां रगीन आकाश धूप म दमकते रुपहले भूज वक्ष मन प्राणो पर एक गहरी छाप छोड जाते हैं।

इन पवतो की गोद म छायी खामोशी एकाकीपन और शाति के मध्य ऐसी *सगीतात्मक सगति है जिससे सहज ही यह आभास हो जाता है कि युगो-युगो म* इस जनजातीय क्षेत्र के लोक-सगीत और और लोक-नत्यो की प्रकृति पर कितना गहन प्रभाव डाला होगा।

15 अप्रल 1950 तक किन्नौर भी भूतपूव रामपुर बुशह रियासत का महत्त्वपूण अग रहा। 1960 तक यह महासू जिला का भाग बना रहा। पहली मई 1960 से इस अलग जिला बना दिया गया। लगभग 6,553 वग कि० मी० चट्टानी क्षेत्र निजन है। 1981 की जनगणना अनुसार यहा की जनसख्या 59 547 है जो 1991 तक अनुमानत 65 000 तक पहुच जाएगी।

यदि स्थानीय लोक विश्वासो परम्परा और मिथिको का आधार विश्वसनीय है तो किन्नौर एक अभिन्न जाति है जिनका स्थान देवताओ और मनुष्य के बीच का समझा जाता है। महाकाव्यो म इन्ह स्वग के सगीतज्ञ या दिव्य गायक कहा गया है।

कुमारसम्भव और विमनवादू ईसा स दो शताब्दी पहले तक किन्नर जाति के पथक अस्तित्व को मान्यता दी गई है। इतिहासानुसार किन्नर जाति आय पूव भाट काल (630 50 ई०) गुग (10वीं स 13वीं शताब्दी तक इसी किन्नौर क्षेत्र म वास करती रही। इसी दौरान यह रामपुर बुशहर रियासत का भाग रहा। 14वीं शताब्दी तक किन्नौर सतकुण्ड क्षत्र के नाम स भी प्रसिद्ध रहा। यह इतिहास प्रसिद्ध है कि किस तरह कमरू (किन्नौर) के ठाकुर न धीरे धीरे अपनी वीरता बुद्धिमता दूरदर्शिता और व्यावहारिक कुशलता स अपन राज्य का विस्तार 18वीं शताब्दी तक कर दिया था, ब्रिटिश काल म भी मामूली तनाव क अतिरिक्त राज्य म शाति रही। स्वतन्त्रता आन्दोलन की लहर इस क्षेत्र म भी धीरे धीरे बढ़ने लगी।

किन्नौर पशुचारी (प्राय भेड़-बकरी) तथा कहीं-कहीं बहुपति प्रथा को मानते हैं। उनकी सादगी रगीलापन, उल्लास और मनोरजन प्रेम उनके लोक जीवन का अभिन्न अग है और इनकी अभिव्यक्ति उनके लोक गीतो और लोक नत्यो

द्वारा हाती है । कोई भी उत्सव, मेला, त्यौहार इन सामूहिक लोक मनोरञ्जना के बिना पूरा नहा समझा जाता ।

किन्नौर के प्रत्यक गाव म लोक-नतक और लोक सगीतन मिल जात हैं । थाडा भी खशी को अभिव्यक्ति का मौका मिल, तो व नाचने गाने लग जात हैं। नत्य और सगीत उनकी नस नस म है। उनको नत्य गति म प्राकृतिक वातावरण का सौन्दय है और उनक सगीत वनो और पहाडा म गजरती हुई ठडी वायु की ताजगा है। कुछ नत्या म उनक दनिक जावन की झलक मिलती है, कुछ म स्थानीय प्रकृति स उनका सामजस्य और कुछ म ऐतिहासिक एव धार्मिक जीवन का परिचय मिलता है ।

किन्नौरी नारी का भी लाक गीता एव लोक नत्या स अथाह प्रम है । इसके साथ साथ उनका सोन चादी क आभूषणो अलकारो फूला म अधिक लगाव है। किन्नौर वहन भी है— मुख पर गीत और काना पर पुष्प किन्नौरा का आकषण है।

रगीन वस्त्राभूषण पहनकर उत्सव पर मदिर क आगन या गाव के खुल मदान म नाचत गात ह । कई बार बाजगी भी अपन लाक वाद्यो सहित नत्य म शामिल हो जाता है ।

किन्नौर म बहुत पुरानी परम्परा प्रारम्भ या पुजारी की है जिन्ह व स्थानीय देवी देवता का माध्यम मानत हैं। य पुजारी लाग भी कई स्थानीय नत्या म महत्त्वपूर्ण भूमिका निभात हैं। प्राय यही आशा का जाती है कि लाक नत्य का प्रारभ पुजारी द्वारा हो ।

किन्नौरी लोक नत्य द्वारा उनके दनिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण होता है। इनम ऋतुओ, वातावरण और भावनात्मक प्रतिक्रिया का सुन्दर सम्मिश्रण है। इनम उनके जीवन के प्रति विचारो का विचित्र प्रतिरूप प्रतिबिम्बित होता है ।

किन्नौरी लाकनत्या का दो प्रमुख भागा म बाटा जा सकता है—

(क) मुखौटा लाक-नत्य जस हारिंग फो खा इत्यादि

(ख) साधारण लोक-नत्य, जस कायड इत्यादि

मुखौटा नत्य किन्नौर लाग दुरात्माओ को भगान क लिए प्रदर्शित करत है । य मुखौट प्राय लकडी क बन होत हैं। सिर और ठोडी पर स्थानीय पशुओ के बाल लगाए जात हैं। सभी मुखौटा पर विभिन्न रग चढाए जात हैं और उन्ह रग बिरग मणका और पत्थरा स सजाया जाता है । य प्राय धार्मिक प्रकार क लोक नत्या म अधिक उपयाग म लाए जात हैं । य प्राय मदिरो म रख जात हैं और सालाना उन्हे विशष उत्सवो पर बाहर निकालत हैं।

इन मुखौटा नत्यो म प्रसिद्ध हैं—(क) लामा नत्य, (ख) प्रेत नत्य (ग) धम्म नत्य तथा (घ) तमोस्वाग नत्य।

केवल गोम्फोना लोक-नृत्य ही एसा नत्य है जिसम लोक-नतक अकेला ही नाचता है और जब खूब बफ गिरी होती है घर क भीतर लोक वाद्य और लोक गीत की ताल और लय पर खुल कर शरीर क प्रत्येक अगो का सुन्दर अभिनय करता है।

ग्यावशून नृत्य म नतक अपने खुले हाथो से नाचता हुआ दो कदम पीछ हटता हुआ नाचता है। लोकनतक पीठ स एक दूसर क हाथ थामत हैं।

सागला नत्य—किन्नौर के साइला गाव के नाम स सागला नृत्य प्रसिद्ध है। यह स्त्री और पुरुषो का मिला-जुला नृत्य है। यह दवी-देवता की आराधना का नत्य समझा जाता है। इसक तीन रूप अधिक प्रचलित हैं। इनम क्याग बक्याग और बनियागचू लोक-नृत्य अधिक लोकप्रिय है।

कायड नृत्य

कायड लोक-नृत्य म नतक दल आध घरे मे लोकगायको के बीच खड हो जाते हैं। बीच मे बाज बजान वाल खड़े हो जात हैं। नतक दल म जो व्यक्ति

किन्नौरी नत्य

सबस आग नाचता है उस धूरे बोलते हैं। धूरे अपने लोक देवता का चवर पुजारी के हाथ स पकडता है और इसके साथ ही लोकवाद्य की मधुर धुनें गूज उठती हैं। लय को क्याग धुन स मिलाया जाता है। लोक नत्य की गति बढने के साथ साथ नतक दल का अधवत्त पूर घर म बदल जाता है और प्रत्येक नतक अपनी दायी

आर खडे तीसरे नतक का हाथ पकडता है। पूरा नतक दल धीमी लय पर झूमता और नाचना है और 'हा, हा' की ऊंची आवाज मे बोलता है। उसकी यह आवाज निकलते ही प्रत्येक नतक अपने आगे के नतक को आगे धकेलता हुआ बारी बारी से अपने घुटनो के बल झुक जाता है। हर चार पग के बाद नतक कुछ क्षण के लिए ठहर जाते है और धीरे धीरे आगे पीछे झूमते है। नत्य गीत पहले दो युवतिया गाती हैं फिर समूह गान के रूप म सभी गाते हैं इस तरह लोकवाद्यो एव लोकगीत की लय पर यह नत्य काफी देर तक चलता रहता है।

वककायड नत्य

दूसरी प्रकार के लोक नत्य को वयकायड कहते हैं। इसम आमने सामने दो दो कतारें होती हैं। पीछे दो या तीन पक्तिया और होती हैं। एक ओर के नतक स्वर और लय पर झूमते हुए धीरे धीरे इनके पीछे हटते जाते हैं और दूसरी ओर उसी प्रकार से आगे की ओर बढते जाते हैं, और इनके बाद विपरीत दिशा मे भी नतक ऐसा ही करते हैं। नत्य की भगिमा मुहामुही होती है। यह लोक-नत्य अधिकतर महिलायें ही करती है।

बोनयाग चू नृत्य—तीसर लोक नृत्य बोनयाग चू म लोक वादक और गायक मध्य म खडे होते हैं और नतकदल उनके चारो ओर घूमता हुआ नाचता है। लय और स्वर का बधन इसम नही होता। यह एक प्रकार का स्वतन्त्र लोक-नत्य है। नतक किसी भी चुने हुए स्वर और लय के साथ नाचते है। कई बार एक छोर पर बठी युवतिया नत्यगीत का उभार देती हैं परन्तु वे स्वय नाचती नही। यह लोक नत्य अधिक सरल है।

लामा नत्य—लामा या प्रेत नत्य किन्नौर के आदिवासी भिक्षुओ म अधिक लोकप्रिय है। इस नत्य का आयोजन भूत प्रेतो को भगाने और प्राकृतिक प्रकोपो को हटाने के लिए किया जाता है। इस नत्य मे सभी नतक मुखौटा पहनकर नाचते हैं। नतकदल मे से दो नतक शेर का मुखौटा पहनते है। इस नत्य म शेष नतकदल इन दो शेरो को काबू करने का प्रयत्न करते है, जिसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि भूत प्रेत और आपत्ति को काबू मे किया जा सकता है। इस लोक नत्य के साथ ढोल लामा नरसिंग और शहनाई बजाए जाते हैं। लाहौल स्पिति के क्षत्रो म भी यह लोक-नत्य लोकप्रिय है।

जापरो लोक नत्य—किन्नौर का एक और लोकप्रिय नत्य है, जापरो नत्य। यह लोक-नत्य किन्नौर की हगरग वादी मे अधिक लोकप्रिय है। इस नत्य म स्त्री पुरुष दोनो नाचते हैं। यह भी सामाजिक उत्सवो पर प्रदर्शित किया जाता है। किन्नौर के परम्परागत लोक-नत्यो मे इसका भी विशष स्थान है।

किन्नौर के अन्य लोकप्रिय नत्यो मे सोन ग्याक्शोन, कटाकापा शबरो,

समग्यक यादो मादो रेकशग शावरो, बल्वा, लुशेन टाली लामो लक्पा-वरची चजा और मौनशौऊ नत्य उल्लखनीय हैं। किन्नौर म ऐसे अनेक लोक-नृत्य प्रचलित हैं।

किन्नौरवासियो को लोक-नत्यो स असीम स्नह है। कोई भी उत्सव या रीति हो वह लोक-नत्य क बिना पूरा नही समझी जाती। इसी प्रकार लोक-नत्य गीत भी प्राचीन और अर्वाचीन स्थानीय देवकथाआ पर आधारित हात हैं। हरिजन लाक्वादक ढाल शहनाई इत्यादि लोकवाद्य उठाए लाक नतको का साथ देते हैं और वे गोलाकार म हाथ से-हाथ पकडे नत्य करते रहन हैं।

वयाग प्रकार के लोक-नत्यो का पगगति हाथ पकडने की शली लाक गीतो की विभिन्नता और लोकवाद्यो की ध्वनि पर वर्गीकरण किया जा सकता है। नेसाग म यह नत्य छ प्रकार का है। माला नत्य डबरक्याग अलशोन सोमहलग तेगसयाग बगयारशिमिग थुगरू।

डबरक्याग—इस लोक-नत्य म नतक दल एक दायरे म पुरुपो के नेतत्व म स्त्रिया नाचती हैं। पुरुष धरे क हाथ म ज्यो ही चौरी आती है लोकवाद्य पर ग्मित बनने लगती है और धुरे चौरी घुमाना रहता है। फिर लाक नत्य धुन कायस बजन लगती है। लोक-नतक पुरुप क साथ नाचत हैं। दायरे के बीच म नतको का नता धुरे दायें हाथ म चौरी लेकर बाय हाथ स अपने तीसरे नतक का हाथ पकडता है और इस प्रकार सारे नतक वत्त की श्रृखला बनती है। दूसरे नतक धुरे की पगगति क अनुसार नाचते है। नतक आग, पीछ दायें-बायें झूमत हुए कदम से कदम मिलाकर नाचते हैं। प्राय नतकदल बायें स दायें चलत है। पहले तीन कदम आग और फिर दो दायें कदम फिर दूसरा पीछे इस प्रकार नत्य चलता रहता है। हर चौथे कदम पर नतक कुछ क्षणो क लिए रुकता है और सामने पीछे झूमता है। लोक नत्य की इस सामूहिक हिलजल को चलग कहते हैं।

लोक-नत्य क साथ दो स्त्री गायिकायें नत्य गीत बालगयिग गाती हैं। उनकी पक्तिया सारे नतक मिलकर गाते हैं। जिस जगीधग कहते है। नत्य बडी देर तक चलता रहता है।

जातरु कायन नत्य—यह लोक-नत्य किसी त्योहार के अवसर पर आयोजित होता है और नाच म त्योहार सम्ब धी गीत गाए जाते हैं। इसम नतको की सख्या कभी कभी सौ स भी ऊपर हो जाती है। धूरे चवर लकर नाचता है।

पुलशोन नत्य—नेसग का पुलशोन लोक-नत्य भी डबरक्याग की तरह प्रदर्शित होता है। इसक साथ नत्य गीत तो नही पर लोकवाद्य ढोल नगाडे ढोलकी करताल और भानो बजत हैं। इस लोक नत्य म नतकदल का नतत्व श मथास करता है जिसक बायें हाथ म देवता का त्रो होता है। प्रारम्भ म नतक

लाहौल स्पिति के नृत्य

गा रही स्त्रियां मगल कीतन
भर रहे तान नवयुवक मगन
हसते, बतलाते बालक गण

—पत

लाहौल स्पिति पवतशृखलाओ तथा तिब्बत, चम्बा किन्नौर और कुल्लू से घिरा हुआ पहाडी क्षेत्र है। आदिकाल से ही यह जिला अपनी प्राकृतिक सीमाओ के कारण एकान्त मे रहा है। वष भर म यह क्षेत्र अधिकतर वफ स ढका रहता है। यह एक ओर तो रोहताग पास (ऊचाई 13 400 फीट और दूसरी ओर कुजम 15,000 फीट ऊचाई) स घिरा हुआ है जो लाहौल को स्पिति स अलग करता है। लाहौल की अपेक्षा स्पिति पिछडा क्षेत्र है। लाहौल स्पिति का क्षेत्रफल 12 210 वगमील है। यह घाटी तीन घाटियो म विभक्त है—तिनन पटन् तथा गार वादी। चन्द्र और भागा यहा की दो प्रमुख नदिया ह। तान्दी नामक स्थान म दो नदियो का सगम होता है। उसस आग य दो नदिया अपना नाम छोडकर चनाव नदी का नाम धारण करती हैं। लाहुल गरजा तथा स्वागला इस घाटी के पर्यायवाची नाम हैं। इन आदिवासियो के लिए लोक-नृत्य एक ही स्वाभाविक लगत हैं जसे मानव बोलता है। लोक गीत, लोक नत्य और छग पीना तीना साथ साथ चलता है। मुख्य रूप स यहा के नत्य दो प्रमुख रूपो स प्रदर्शित होन हैं। एक है लाक रूप दूसरा धार्मिक रूप जो बौद्ध विहारो म ही होता है।

लाहौल स्पिति क लोक-नृत्य पूरे दायरे, आधे दायरे या सकेन्द्रित तीन रूपो म प्रदर्शित हो सकत हैं। कदमताल साधारण रहती है परन्तु कुछ दक्ष और वद्ध नतक कठिन कदमताल वाल लोक-नृत्यो का प्रदशन भी करत हैं। प्रारम्भ म लोक-नृत्यो की गति धीमी रहती है परन्तु चरमबिन्दु पर पहुचत गति तेज हो जाती है। जा थक जात हैं, वे बठ जाते हैं और अन्य उनकी जगह आ जात हैं। शरद ऋतु म ये लोक-नृत्य भीतर सभव है और ग्रीष्म ऋतु म घर स बाहर। इस जनजातीय जनपद का कोई भी उत्सव, जन्म, विवाह, मला जस गाची, फागली और हालदा

पूरा नहीं समझा जाता जब तक उसमें लोक संगीत और लोक-नृत्यों का समावेश न हो। स्थानीय रूप में इन्हें लोकानुरंजन का प्रमुख माध्यम माना जाता है।

लाहौल के प्रसिद्ध मेलों में किलार गांव का सदारंच मेला सिसू, पागला कुन्ड (पार्न बालि) और जोरि मेले उल्लेखनीय हैं। इन मेलों के अवसर पर लोग रंग बिरंगे वस्त्राभूषण पहनकर शामिल होते हैं और लोकानुरंजन करते हैं।

हर्षवर्धन साम्राज्य के पतन के बाद सेन वंश ने स्पिति पर राज्य किया। इनमें समुद्रसेन, राजसेन और चतसेन के नाम प्रमुख हैं। इसके बाद यह क्षेत्र विभिन्न शासकों के अधीन रहा कभी कुल्लू तो कभी लद्दाख की अधीनता और बाद में पंजाब का भाग।

शनि और शबू जोर नृत्य—लाहौल स्पिति का एक प्रसिद्ध लोक नृत्य शनि और शबू है। शनि जोर नृत्य तो प्रायः बौद्ध विहारों में ही भगवान बुद्ध की प्रतिमा के सामने प्रदर्शित किया जाता है। यह पूर्णतः धार्मिक नृत्य है। इसके साथ कोई गीत संगीत नहीं बजाया जाता केवल नगाड़ा और बांसुरी ही बजाते हैं। इसकी अपेक्षा शबू लोक नृत्य धार्मिक न होकर सामाजिक है। यह नृत्य बौद्ध मठों के बाहर सामाजिक उत्सवों में भी प्रदर्शित किया जाता है। नृत्य की गति धीरे धीरे तीव्र होता जाता है।

जोमे नृत्य—जोम जोर नृत्य स्त्रियों का प्रिय नृत्य है। नर्तक दल एक घेरे में खड़े होकर नृत्य गीत गाते हुए नाचते हैं। युवक और बच्चे भी कभी कभी इसमें भाग लेते हैं। स्त्रियां एक दूसरे के हाथ थामे रहती हैं। यहां के स्थानीय वाद्यों की मधुरता जब वातावरण में घुल जाती है तब दर्शकगण एक स्वर्गिक आनन्द का अनुभव करते हैं।

एक वालती नृत्य—इस जोर नृत्य में एक स्त्री एक हाथ से ढोलक थामे रहती है और दूसरे हाथ से उसे सिर के साथ थामे हुए बजाती रहती है और तीन चार पुरुष और स्त्रियां उसके संगीत की लय में नाचते रहते हैं और साथ में लोकगीत गाते हैं। इसी तरह यह नृत्य नर्तकदल के मस्त नृत्य, लोकगीत और लोकवाद्य की मधुर त्रिवेणी के संग चलता रहता है।

मकर नृत्य—इसी प्रकार मकर नृत्य (Dragon Dance) में नर्तक मुख पर मुखावरण पहनते हैं। शरीर पर लम्बा चोला पहनते हैं जिसके बाजू लम्बे होते हैं। इस पहनावे में नर्तक का कोई भी अंग दिखाई नहीं देता। इस नृत्य के साथ एक कथा भी जुड़ी हुई है। भोट राजाओं में लांग दर्मा राजा बहुत अत्याचारी था। उसने हिमाचल प्रदेश के धर्म और संस्कृति को नष्ट भ्रष्ट करने में कोई भी कसर न उठा रखी थी। उसने अनेक बौद्ध विहार, पुस्तकालय नष्ट किए। पंडित और लामा मौत के घाट उतारे। एक बार जब वह विजय उत्सव मना रहा था तो उसमें यह मकर नृत्य भी हो रहा था। वह नर्तक अपने कपड़ों में एक छुरा छिपाकर

लाया और नाचते नाचते राजा के समीप पहुंचा और छुरे से राजा की हत्या कर डाली। तब से यह नृत्य लाहौल स्पिति का लोकप्रिय नृत्य समझा जाता रहा है। इस नृत्य में लामा लोग गियर उत्सव पर नाचते हैं। नर्तक लोग खुकरी के साथ नाचते हैं।

छम या प्रेत नृत्य—यह लामाओं का धार्मिक नृत्य है और बौद्ध गोम्पा में प्रदर्शित होता है। नर्तक चमकीले वस्त्र आभूषण पहनकर जानवरों पक्षियों और भड़कीले प्रेतों के चमकीले मुखौटे पहनते है। नर्तक बार बार एक ही शैली में लयात्मक रूप में पाँव पटकते हुए एक ही दायरे में नाचते है। हाथ में कढ़ाई किए झंडे लिए नर्तकों के अभिनय के साथ साथ मुखौटा पहन नर्तक विनोद करते हुए एक विचित्र सा प्रभाव वातावरण में फैला देते हैं। इस नृत्य में लामा लोग भी भाग लेते हैं और नर्तक के साथ कुछ मन्त्र भी पढ़ते हैं। नर्तक विभिन्न प्रकार के प्राय आठ मुखौटे पहनते हैं। ये आठ कराल भयावह रूप आठ महान बोद्धिसत्व के प्रतीक हैं।

छम्म नृत्य—यह लोक-नृत्य बौद्ध लामाओं की तान्त्रिक नृत्य पद्धति है। लोक विश्वास अनुसार प्रसिद्ध बौद्ध लामा पद्मन ईश ने इस लोक-नृत्य की परम्परा आरम्भ की। इस लोक-नृत्य का आयोजन मानव जाति के उत्थान और दुरात्माओं को भगाने के लिए किया जाता है। इसका आरम्भ में बौद्ध मन्त्रों और प्रार्थना से किया जाता है। इसमें विशाल आकार के वाद्ययन्त्र—थुङ जेन (बड़ी करनाल) डन (बड़ा ढाल) रोलमा (बजाने की कटोरियां) और शहनाई (गेलिङ) बजाए जाते हैं।

नर्तक विशेष प्रकार की चमकीली वेष भूषा में मंच पर आते हैं। मुकुट (चेसुम) कपाली (हाथ में लेने के लिए कपाल) फुरबू जिसे नाये हाथ में लिया जाता है शानाक्या (टोपी), तातयो (विशेष चोगा) काएचिन (जकेट-पगदान) पहनते हैं।

इस नृत्य में प्रारंभ में देवी-देवताओं से रक्षा और कल्याण के लिए, आयोजन की सफलता के लिए आशीर्वाद और अन्त में धन्यवाद शामिल है। नृत्य के दौरान उपस्थित लामा अखण्ड मन्त्रोच्चारण करते रहते हैं। उनका विश्वास है कि मन्त्रों में जिनका आह्वान किया जाता है वे उपस्थित होकर विनती सुनते हैं। सारे छम्म नृत्य को वे 18 भागों में बांटते हैं। नर्तक लामा मुखौटे पहन कर, हाथ में कपाल और फुरबू लेकर नृत्य करते है। इसमें अन्य देवी-देवताओं के साथ साथ कोएजन (यमराज) और उनकी धर्मपत्नी यम चामुण्डी का आह्वान किया जाता है। छम्म के मुख्य भाग से पहले देवताओं को पेय भेंट किए जाते हैं। डल्योक में दुरात्माओं को भगाने की प्रार्थना की जाती है। छिगुल, छम्मबुन छम्मनामुङ को तेरह लामाओं का लोकनृत्य भी कहा जाता है। गुकोर, लुवा, गिन्दौत, ढम्यत्या, श्यावा, छम्मशुक, छाटम्यल, सरवयम, छिदानमा, डल्योक, और छम्मचोत् आदि इस

आयोजन के विशेष लोक-नृत्य हैं। छम्म मुख्यत मुखौटा नृत्य है।

स्पिति वादि के गुतोर उत्सव म छम्म का विशेष आयोजन नवम्बर में किया जाता है। तीन दिन सभी लोग प्रार्थना करते हैं और चौथे दिन छम्म नृत्य का आयोजन किया जाता है। छम्म नृत्य के साथ-साथ थनाआ (चित्रपटो) का पूजन और प्रदर्शन आवश्यक माना जाता है। लाहुल म ग्येमूर शाशुर और तिनन (गोंधला) म ही लामाओ द्वारा छम्म का भी आयोजन किया जाता है। मुखौटे प्राय प्रेतो जसे होते हैं इसलिए इसे प्रेत नृत्य भी कहा जाता है।

घोफी नृत्य—यह भी सामूहिक और पुराना लोक नृत्य है। इसमे स्त्री पुरुष भाग लते है। नर्तक एक वृत्त म नाचत हैं। साथ म लोकवाद्य ढोल और बासुरी भी बजाते हैं। स्त्री नृत्य गीत गाती हैं। यह सरल नृत्य है और नर्तक आवश्यकता नुसार इसम परिवर्तन भी कर सकते हैं।

शौन नृत्य—इस नृत्य म सगीत नहीं होता। नर्तक एक लय म कदम पटकते हुए धीरे धीरे नाचत है और एक दूसरे के बाजू पकडकर वृत्ताकार म नाचत है। यह किन्नौरी लोक नृत्य स मिलता जुलता है।

शोनी नृत्य—यह भी लगभग शौन नृत्य की तरह है। कई बार गाते हुए नर्तक जोर स तालिया बजाते हैं और नृत्य गीत गाते हैं।

छोडपा नृत्य—इस प्राचीन नृत्य म प्राय मुखाभिनय होता है। इसम भाव भगिमाओं का महत्त्व रहता है। नर्तक मुखौटे पहनते है। साथ म स्थानीय लोक वाद्य भी अपनी चिरपरिचित लोक धुन बजाते है।

स्पिति क्षेत्र म स्त्री पुरुष प्राय प्रत्येक नृत्य म साथ नाचते हैं केवल लामा लोग अलग नाचते हैं।

स्पिति क्षेत्र म बेटास जाति के लोग व्यावसायिक नर्तक होते हैं जिन्होंने इस क्षेत्र की पारम्परिक लोक नृत्य-कला को जीवित और सुरक्षित रखा है। सारे स्पिति क्षेत्र म ऐसे लोगो की सख्या पचास स अधिक नही होगी। ये सब अनुसूचित जाति के आर्थिक रूप स निधन लोग होते हैं। स्पिति क्षेत्र क लोकप्रिय नृत्यो म से ये नृत्य गिने जा सकते है।

गर नृत्य—इस नृत्य मे स्त्री और पुरुष अलग अलग नाचते हैं। लोकवाद्यो की धुन के साथ यह नृत्य बडी धीमी गति स प्रदर्शित होता है। साथ म लोग नृत्य गीत भी गाते हैं। यह नृत्य घर क भीतर भी प्रदर्शित किया जाता है।

जबरू नृत्य—इस नृत्य म स्त्री पुरुष साथ नाचते है। इसम लोकवाद्यो की अधिक आवश्यकता नही पडती है। दूसरे नर्तक क पीठ पीछे से तीसरे नर्तक का हाथ पकडकर नर्तक पक्तिबद्ध होकर नाचते है। आधी पक्ति पुरुष नर्तको की और आधी स्त्री नर्तको की होती है। नृत्य गीत की एक पक्ति पुरुष गाते हैं दूसरी का उत्तर स्त्रिया भी नाचती हुई गाकर देती हैं।

मूकर नृत्य—इस नृत्य म स्त्री पुरुष अलग-अलग नाचते हैं और साथ म लोक वाद्य अपनी पारम्परिक शली म बजाते हैं। लोकवादक नृत्यगीत की एक पंक्ति गाते हैं जिसे सारे नतक उठाते हैं।

घुघुम नत्य—यह नत्य केवल लामा नाचते हैं। इसमे भी पारम्परिक लोक वादक और लोकगायक लोकवाद्य और लोकनृत्य-गीत गाते हैं।

भूचन नत्य—चूकि इस नृत्य म केवल भूचन जाति क लाग नाचते हैं इस लिए इसका नाम भूचन पड गया है। इस नृत्य म तलवार चलाने की दक्षता प्रदर्शित हाती है। यह पिन घाटी का नत्य है। इस जनपद म याक-नत्य सिंह-नत्य और बन्दर-नत्य बाघ-नत्य का भी प्रचलन है। इन जानवरा की खालो म घुसकर कलाकार अपनी नृत्य कला का प्रदशन करत हैं। मुखौटा क अतिरिक्त मुह म लाल, काला, हरा, पीला रग लगाकर भी विभिन्न उत्सवा एव अवसरो पर प्रदर्शित किए जाते हैं।

लाहौल स्पिति क इन आदिवासी लोक-नृत्यो की अद्भुत वेश भूषा और लोकवाद्यो स वातावरण पर एक विचित्र-सा प्रभाव छा जाता है। भल ही आप लोकगीत की कोई पंक्ति न समझ पा रहे हा, परन्तु मन ही मन आपको एक अपूर्व आनन्द का आभास होने लगता है और यही लोक-कला की श्रेष्ठता का प्रमाण है।

कुल्लू के लोक-नृत्य

ढालपुरी विजयदशमी लागी आसा बाजा मगाणा,
गीतों लाणे शोभले शोभले, कुल्लू रा नाट लगाणा।

हसते-खेलते, नाचते गाते कुल्लू निवासियों का भी कोई समारोह पर्व या त्यौहार बिना लोक नृत्य लोक संगीत और खेल-तमाशों से सम्पन्न नहीं होता। निःसन्देह लोक संगीत की तरह लोक-नृत्य भी उनके लिए प्रसन्नता अभिव्यक्ति का एक प्रमुख साधन है। यहां के लोग स्वभाव से ही आनन्दप्रिय एवं शान्ति प्रिय हैं।

कुल्लू का सबसे प्राचीन नाम कुलूत ही है। ह्यूनसांग वराहमिहिर विशाखदत्त के नाटक मुद्राराक्षस कौटिल्य के अर्थशास्त्र रामायण महाभारत, भागवतपुराण हीरानन्द शास्त्री विलसन फोगल कनिंघम हैचीसन रप्सन, वरगनी हारोट एम० एस० रंधावा, जी० डी० खोसला लालचंद प्रार्थी ने अनेक प्रमाणों द्वारा कुलूत देश की प्राचीनता सिद्ध की है।

कहते हैं कुल्लू राज्य की स्थापना बेहंगमणिपाल ने पहली या दूसरी शताब्दी ईस्वी में डाली। वे मायापुरी हरिद्वार से आए थे। इस राज्य की प्रथम राजधानी जगतसुख थी बाद में राजा जगतसिंह के समय राजधानी (1637 1672) वर्तमान सुलतानपुर (कुल्लू) बनी। राजा मानसिंह के समय कुल्लू राज्य उन्नति के शिखर पर था। उसके समय लाहूल भी कुल्लू के अधीन हो गया। 1840 ई० में सिखों ने कुल्लू पर आक्रमण कर उसे सिख राज्य के अधीन कर लिया।

1848 ई० द्वितीय सिख युद्ध के फलस्वरूप अंग्रेजों ने कुल्लू लाहौल स्पिति पर अपना अधिकार कर लिया। कुल्लू के भूतपूर्व राजा विशन सिंह के पुत्र प्रतापसिंह ने देश के स्वतन्त्रता प्रेमी क्रान्तिकारियों से मिलकर बगावत परंतु असफल रहे। कुल्लू पहली नवम्बर 1966 तक पंजाब का भाग रहा।

सारा कुल्लू प्रकृति का अत्यन्त मनोहर और समृद्ध स्थल है। यहां के सुंदर दृश्य, चरागाह पहाड़ नदी-नाले हरे भरे वन सभी यहां के सौन्दर्य को चार चांद लगाते हैं। श्रीयुत लालचंद प्रार्थी के शब्दों में— कुल्लू और सिराज के

लोगो के सम्बन्ध म बहुत से अंग्रेज शौकीन लखकों न यह बात खासतौर पर लिखी है कि ये लोग नाचने-गाने और फूलो के अत्यन्त शौकीन है कुल्लू और सिराज के मलो की रगीनियो का कोई मुकाबला नही है। कुल्लूट नाच जिस नाटी कहत हैं निश्चित कुल्लूई लिबास म अपन ढग की एक अपूव कला है। वाद्यो की लय और शहनाई की धुन पर जब कुल्लूई सगीत की लहर उठती है तो नाचन वाला अनायास एक हार्दिक मस्ती म झूम झूमकर नाचन लगता है। कुल्लू का नाच कवाइली नही बल्कि प्रतिष्ठित तथा शोभनीय शारीरिक स्पन्दन तथा मदुल मनोवत्ति के प्रभाव के अधीन उत्पन्न होन वाली गति की अदभुत तथा कलात्मक अभिव्यक्ति इस नाच म उन्हे एक आध्यात्मिक और दविक अनुभूति का आभास होता है। कुलुत देश क लोग जब भी किसी मल पर जायेंग तो प्रत्यक पुरुष-स्त्री, बच्चे बूढ़ो को फूलो से सुसज्जित पायेंग। टोपी म फूल बाला म फूल गल म फूलो का हार स्त्रियां प्राय कान के ऊपर फूल को सजाती है और तभी कुल्लुई लोक गीत का यह पद वातावरण म गूज उठता है—

सूने जूही रा झुमकु शोभला, मौथे पाधली बिंदी।
कोना पीछला डोल्हरू झूरिये मूल देली की सादी॥

अर्थात ए मरी यादा का रानी तरी जूही का झूमर जो सोने क रग जसा है बहुत सुन्दर है और सोन पर सुहागा का काम तुम्हारे माथ की बिन्दी कर रही है पर तु असल बात तो यह तर कान के पीछे लटक हुए गेंदे क फूल की ही है, बता इस कीमत से देगी या प्यार क बदल मुफ्त। एस ही अनगिनत नत्य-गीत लोक-नत्य को सप्राण और शोभला बनात हैं।

नाटी-ढीली, रझका—अन्य क्षत्रो की तरह कुल्लू म भी नाटी नत्य अधिक लोकप्रिय है। इसम शारीरिक गति का प्रभुत्व रहता है। कुल्लू म यह सात प्रकार का नत्य है। लोकवाद्यो एव लोक सगीत की ताल पर लोकनतक क कदम थिरकने लगन हैं। इस नत्य म न ही नतक दल की कोई सख्या निर्धारित होती है और न ही हर बार विशेष वशभूषा पहनत हैं। नाटी कई प्रकार स नाची जाती है। इनम ढीला देमी तिणकी, फेटी लालनी बसाहरी दाहरी लाहली, चम्बायनी बाखली काहिका, हुलकी उजगजमा गन गढेकर खड्यात बाठडा, लुडी, तराम आदि। वतमान प्रचलित रूप सराजी नाटी है।

इस नत्य म नतक पहले बाइ टाग स लगातार दो कदम लता है चौथी बार बाइ टाग को पीछे करत हुए दाइ टाग स केवल एक कदम लकर पीछ हटाता है। यह क्रम अ त तक जारी रहता है। कई बार नतक एक दूसर क आगे पीछ नतन करत हुए अलग अलग नाचत है और कई बार एक दूसरे क पाछ हाथ पकड़ हुए चलत

इस लोक-नत्य म हरण खलियान क बीच म एक जगह धीरे धीरे नाचती है और बाहा और बूढी उसके चारो ओर आगे-पीछे दायें-बायें नाचते हैं। कुछ नत्यो म हाथ खाली और कुछ म हाथो म रूमाल या तलवार होते हैं। हरण नत्य के प्रमुख रूप हैं—साई-बधाई सून रा बाधणू चन्द्रावली देवारी आली दूध कटोर और हरण पहुणी आयी। साई-बधाई सून रा-बाधणू, चन्द्रावली नत्य म विलम्बित ताल व धीमी गति वाले नत्य हैं। दूध कटोर और हरण पाहुणी आयी तलवार नत्य है।

तलवार या खडायत या गडायत नत्य—कुल्लू म भी प्रदेश के अन्य क्षत्रो की तरह प्राय प्रत्येक ग्राम देवता का अपना लोकगायक दल लोकवादक और लोक वाद्य होते हैं, जो देवयात्रा क सग चलता है। ढोल और अन्य लोकवाद्य शहनाई, करनाल इत्यादि कि सुमधुर गूज म नतकदल की तलवारें अपनी विशेष नतक वेशभूषा म वाद्यो की ताल पर हाथो म हिलती है और तलवार नत्य आरभ हो जाता है। कुछ नतक विलग होकर नतन के साथ तलवार का खेल दिखाते हैं। इस खेल म प्रत्यक नतक नाचता हुआ, दूसरे प्रतिद्वन्द्वी के वार से बचाव करता है। शेष नतकदल एक हाथ म तलवार लेकर और दूसरे म ढाल लेकर नत्य करते रहते हैं। तलवार नत्य की समाप्ति पर नतक जोश फिर से माला म आकर लयात्मक गति क साथ नत्य का मनोहर प्रदशन करते हैं। यह लोक नत्य आनन्द दायक होने के साथ साथ धार्मिक भी है।

सागल नत्य - सागल नत्य म स्त्री-पुरुष साथ नाचते हैं। यह नत्य स्थानीय देवी देवता और वीर पुरुषो की याद म प्रदर्शित होते हैं। इसम पुरुष और स्त्रिया आमने सामने अलग अलग अर्द्धवत्त बनाते हैं परन्तु लोक नत्य की प्रगति के साथ साथ वे आपस म मिल जाते हैं। लोकनतक प्रश्नोत्तर के रूप म नत्यगीत गाते हुए नाचते हैं।

करथी नत्य—कुल्लू का एक अन्य लोकप्रिय नत्य है करथी। इस नत्य म प्राय स्त्री पुरुष दोनो नाचते है। इस नत्य म हाथ-पाव की थिरकन एक ओर और लय दूसरी ओर होती है। भडकील, सुन्दर और नये वस्त्र आभूषण म लोग गाव के खुले मदान म आकर चादनी रात म लोकगीत गाते हुए नाचते हैं। लोकनतक एक-दूसरे का हाथ थाम कर एक वत्त बनाते हैं और धीरे धीरे सगीत और लोकनाच की ताल पर नाच आरम्भ होता है। शीघ्र ही नत्य म गति आने लगती है और जब यह नत्य चर्मोत्कष पर पहुच जाता है तब सारा लोकनतक अपने सहायक नतक का आनन्द और भी बनाकर अपने हाथ और परो के स्पन्दन से प्रेरित करती है। लोक नत्य की गति का लोक सगीत का भावनाओ के साथ

गहरा सम्बध होता है । इन नृत्यगीता की विषयवस्तु कही वीरता है तो कही प्रेम कहीं दवताआ की स्तुति । दशहरा या अय प्रमुख उत्सवो पर कुल्लू के लोक नत्या की शोभा देखत ही बनती है ।

पेखा नत्य—इस नत्य म स्त्री पुरुष नाचत हैं। नतकदल एक घेरे म हाथ पकडकर नाचत और गात हैं। नतक गीत और वाद्यो की लय पर नाचत, गात और उछलते हैं।

इन लोक-नृत्यो के अतिरिक्त भी कुल्लू म अनक अय नत्य प्रचलित हैं, जसे लुडडी प्रेक्षनी, नाटारभा, दयाली, छडी, बाठडा। इन नृत्या म कुछ दूसरे नाम स अय क्षेत्रा म भी लोकप्रिय हैं।

हुलकी नत्य—देऊ खेल के पूवरग को 'हुलकी नृत्य, भी कह सकत हैं। हुलकी नृत्य म देवता अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है। देवता की गुरमडली क सभी सदस्य लम्बे चोगे पहनकर सिर पर गोल कुल्वी टोपी रखकर पक्तिबद्ध बठ जाते हैं। गुर आवश्यक पूजा पात्र कासे या चादी की थाली जिसम अक्षत (चावल) बिखरे रहत हैं जलता पूजा का धमरा (धाडच) और पीतल की घटी सामने रख देत हैं। सभी गुर मत्रोच्चार करते हुए अपने दोनो हाथ, अगुलियो के बल कास की थाली म टिकाकर देवस्तुति करत हैं। जब गुरा म कपन प्रारभ होता है, सिर स टोपिया एक ओर गिर जाती हैं। तभी देवता का वाद्यव द बजना प्रारभ हो जाता है—जम करनाल रणसिघा काहल बज उठने हैं। गुर और दशक उठ खडे हाते हैं गुरु अपन हाथा म धडच और घण्टी लकर देवरथ के समीप ल जात हैं। देवता की सजी धजी पालकी (रथ) का एक व्यक्ति सिर पर या दो व्यक्ति उस डण्डे के सहारे कधा पर उठाकर नत्य प्रारभ हो जाता है। लोग भी नृत्य करते हुए मला स्थल के तीन चक्कर काटते है।

देऊ खेल—देऊ खेल मूलत देवताओ का नत्य है। यह अनुष्ठान के रूप म देवता के गुर ही इसे प्रदर्शित करत हैं। इस नत्य के लिए प्रत्येक देवता के भण्डार मे रखे हुए विभिन्न प्रकार क शस्त्र निकाल जाते हैं। इनम खण्डा लोहे की जजीरें, माला तीन चार किस्म की लोहे की कटारें हाती हैं। कही कही जजीरो म बधा हुआ लोहे का एक काटेदार गोला भी होता है। इन सारे हथियारो को दवता के चेल के आग जिसे गुरु कहते है जमीन पर गाढ दिया जाता है। तब गुरु नगा होकर इनमे से हरेक के प्रयोग का पूण प्रदशन करते हैं तथा कटारो को अपने नग शरीर पर चलाता है। लोहे की जजीरा से अपने नगे शरीर को पीटता है साथ-साथ ढोल तथा अय लोकवाद्य की एक विशेष ताल पर नाचता भी जाता है। इस नत्य को शक्ति पूजा प्राचीनतम रूप भी माना जा सकता है। इस नृत्य म मन्त्रोचार, गुरु द्वारा नृत्य देखने योग्य है।

इसे हर स्थान पर या जब कभी प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। देवताओं के मेलों-अनुष्ठानों में ही प्रदर्शित किया जाता है और यह मूक अभिनय का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह दो तीन घण्टों तक लगातार चलता रहता है। देवता के गुर या चेले पात्र होते हैं। खेल का आरम्भ हुलकी नृत्य से होता है। देवता के दजनों ढोल, नगारे करनाल तुरी ढोलक दमामा, भाणा थाली, काहल (करनाल) रणसिंघा शहनाई ढौंसू छैणे आदि वाद्ययन्त्रों की धुन में पहले सभी लोग और गुरु नाचते हुए देवता के मंदिर की परिक्रमा करते हैं और मंदिर के सामने मैदान में पहुंचते हैं। सभी लोग मैदान के चारों ओर बैठ जाते हैं। एक किनारे पर वाद्य वृन्द खड़े हो जाते हैं। दूसरी ओर सभी गुरु वरिष्ठता के आधार पर खड़े होते हैं। उसी समय देवता का कारदार उन सभी शस्त्रों को उठाकर मैदान के मध्य भाग में गाड़ देता है जिनके द्वारा उस देवता ने आदिकाल में दूत, भूत दानव प्रेत पिशाच राक्षस को मारकर अपनी जनता को शांति दिलाई थी।

गुरुओं ने लम्बे-लम्बे बाल रखे होते हैं। वे अपने चेला के बाल उतार देते हैं। नंगे सिर, कमर तक नंगे शरीर और घुटनों से नीचे नंगी टांगों और पैरों में बिना जूते के वे सभी हाथ में विशेष मंत्र धड़छ लेकर खड़े होते हैं। वाद्य-यन्त्रों पर विशेष धुन बजते ही पहले मुख्य गुरु पंक्ति से निकलकर शस्त्रों के निकट जाता है। सबसे पहले एक हाथ में घंटी और दूसरे में धड़छ लेकर वाद्य-यन्त्रों से संगीत में चारों दिशाओं में धूप का धुआं उछालता हुआ नाचता है। भूमि में गाड़े शस्त्रों में से गुज को उठाता है। उसे दोनों हाथों में नचाता है। अपने शरीर को पीटता है और चारों दिशाओं में ऐसा प्रदर्शन करता है जिससे प्रकट होता है कि देवता ने अपने शत्रु को गुज से कैसा मारा। उसके बाद जंजीरों के गुच्छे का प्रदर्शन करके दिखाता है कि उसने शत्रु को किस प्रकार जंजीरों से बांधा। उसके बाद बारी-बारी सभी शस्त्रों का प्रदर्शन करता है जिनमें कटारियां प्रमुख हैं। दोनों हाथों में कटारियां लेकर अपने शरीर के चारों ओर घुमाता है। इनके तेज सिरों को अपनी गाला पेट और पसलियों में चुभाता हुआ वह दर्शाता है कि उसने शत्रु को उनसे कैसे प्रहार किया है। सबसे अन्त में भेखल झाड़ी का प्रदर्शन करता है जिससे सारे समाज में धन धान्य सुख शांति समृद्धि-सम्पन्नता की कामना की जाती है। यह सब कुछ कर लेने के बाद वे अन्य गुरुओं को इशारा करता है। वे एक एक करके बारी-बारी आकर उसके चरण छूते हैं और उसके साथ मिलकर सब शस्त्रों का प्रदर्शन पूर्ण करते हैं। दऊ खेल आदि से अन्त तक मूक अभिनय का विशिष्ट उदाहरण है और इस दृष्टि से प्राचीन संस्कृत साहित्य के उप रूपकों का अवशेष है।

फागली नृत्य—कुल्लू में फागली का त्यौहार विशेष रूप में मनाया जाता है। इस नृत्य में कुछ विशेष नाच राक्षसों का घास-फूस का लिबास और मुंह पर

प्राचीन समय के लकड़ी के बने हुए राक्षसों के मुखौटे लगाकर नाचते हैं। उनका नाच और उनकी गति निःसन्देह मनुष्य की नहीं होती। एक-एक नर्तक (राक्षस) इस सुन्दर किले में से किसी सुन्दर स्त्री या अच्छी लड़की को तलाश करने का अभिनय करता है, जिससे स्पष्ट होता है कि राक्षसों का परस्पर नाचतो होता ही है, इसके *साथ-साथ इस नृत्य में देवता के हाथों राक्षसों की पराजय या* दूसरी अवस्था में राक्षस के साथ समझौता की कहानी दोहराई जाती है। इस नृत्य में उन हथियारों का भी प्रदर्शन किया जाता है जो इस लड़ाई में प्रयोग में लाए गए थे।

चम्बा के नृत्य

गोरी दा मन लगेया चम्बे दियां धारां।
घर घर टिक्लू घर घर बिंदलू,
घर घर बांकियां नारां।

चम्बा राज्य की स्थापना 550 ई० में हुई। पहले इसकी राजधानी भरमौर रही बाद में चम्बा। 15 अप्रैल 1948 तक चम्बा पंजाब की पहाड़ी रियासतों का भाग रहा। उसके बाद हिमाचल प्रदेश का एक जिला। इस दौरान इस जनपद ने अनेक उतार चढ़ाव देखे।

शिवालक पहाड़ियों को छूकर आन्तरिक हिमालय तक 8 124 वर्गमीटर भू भाग पर फैला चम्बा जिला उत्तर-पश्चिम और पश्चिम में जम्मू काश्मीर के भद्रवाह, उत्तर-पूर्व और पूर्व में लद्दाख लाहुल और बड़ा भंगाल और दक्षिणपूर्व में कांगड़ा और पंजाब के गुरदासपुर जिले की सीमाओं से घिरा हुआ है। चम्बा क्षेत्र भी अपने सुमधुर लोकगीतों की तरह सुमधुर सौम्य लोक नृत्यों के लिए प्रसिद्ध है। चम्बा और पांगी क्षेत्र के प्रचलित प्रमुख लोक नृत्यों में नाटी, नाच डंगारस, फुरेही पांगी घुराटी और सैन नृत्यों के नाम गिने जा सकते हैं।

सच तो यह है कि चम्बा के लोक जीवन की अमर थाती लोकगीत और लोक नृत्य को यदि किसी ने जीवित रखा है तो उसका श्रेय चम्बा के गद्दी चराही पंगवालों और साधाओं को जाता है। आधुनिकता की चकाचौंध में नयी पीढ़ी में इन लोक मनोरंजन के परम्परागत साधनों की ओर कुछ उदासीनता-सी आ रही है परन्तु पुराने लोग आज भी इनसे बढ़कर आनन्द किसी अन्य साधन में नहीं पाते।

गद्दी लोक-नृत्य— गद्दी हिमाचल प्रदेश के हंसमुख और रंगीन लोग हैं। ये लम्बे चौड़े और हृष्ट-पुष्ट परिश्रमी होते हैं और स्वभाव के सीधे-सादे और विनम्र होते हैं। नाच-गाकर यह लोग मन बहलाते हैं। गद्दी नृत्य में नर्तक गीतों के स्वर और लय में झूमते हुए गोलाकार दायरे में नाचते हैं। यह लोक-नृत्य के साथ बड़े-बड़े ढोल और नगाड़े बजाते हैं। उनका सुन्दर चोला छतरी की तरह नाचते हुए

फल जाता है। गद्दी नत्य म प्राय गद्दी युवक और वद्ध नतन करत हैं। दल मे एक नतक मुखिया का काम करता है। उनके लोक-नृत्य गीत भी प्राय शृगारिक होते हैं। गीत की प्रत्यक पक्ति पहले मुखिया झूम झूमकर गाता है और फिर दल के शेष नतक उसका अनुकरण करते हैं। लोक गीत की पक्तिया ज्या-ज्या आग बढ़ती हैं लाक-नत्य म अधिक गति और स्फूति आने लगती है। नतक मस्त होकर झूम

गददी नत्य

झूमकर नाचत हैं। 'हरिनट भला है का शोर वातावरण म गूज उठता है। नत्य गीत स्त्रिया गाती हैं और पुरुष केवल हो-हो करते हैं। गद्दी-नत्य का सौदय और माधुय देखत ही बनता है। चम्बा म मिंजर मेले तथा अय मेलो म इनका आनद उठाया जा सकता है।

पगवाल नत्य—गद्दिया की भाति पगवाल भी मनमौजी लोग हैं और लोक-गीत एव लोक-नत्य इनका लोकप्रिय मनाविनोद है। प्रत्येक उत्सव पर नत्य आवश्यक समझा जाता है। जाति पाति क भेदभाव बिना सब नाचत हैं। दवी देवता की यात्रा की शोभा भी लोक-नत्य म है। नत्य की प्रगति के साथ-साथ अय लोग भी नत्य म शामिल होते जात हैं। पगवाल प्राय सामूहिक नत्य ही नाचते हैं। अकेला नत्य का रिवाज नहीं है। स्त्री-पुरुष अलग अलग नाचत हैं। पुरुष दिन म अधिक नाचते है और स्त्रिया साय ढलन के बाद नाचना पसद करती हैं। लोक-नत्य म हर तीसरा व्यक्ति नतक एक दूसर का हाथ पकडकर वाद्यो और लोकगीता की धुन और लय पर मस्त होकर नाचता है। यहा के लाकवादक प्राय हरिजन होत हैं। हरिजन बासुरी और ढोल बजात हैं। नतक गात हुए और नाचत

हुए दायरे म शरीर को चारो ओर लहरात हुए हाथ सिर ऊपर और कभी नीचे झुकात हैं। जब नत्य चर्मोत्कर्ष पर पहुच जाता है तो उसमे स्फूर्ति आ जाती है। नतक तब तक चारो ओर घूमता हुआ नाचता रहता है, जब तक वह थक नही जाता।

सेन नत्य—पगवालो का सेन नत्य धार्मिक है। यात्रा के दौरान यह नाचा जाता है। इसके साथ गीत नही होता। बासुरी और ढोल की लय पर ही नतक नाचते हैं। नतकदल म एक अगुआ हाता है। उसके हाथ म एक गणेश (कुल्हाडी) होती है जिसे वह शरीर के साथ घुमाता रहता है। लेकिन हुडन की मचत की यात्रा म सन नत्य उल्टे रूप स किया जाता है। लोग बायें से दायें के स्थान पर दायें से बायें नाचते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जब प्राचीन काल मे सेन नत्य हो हो रहा था तब एक राक्षस पगवाल क भष मे दल के मध्य नाचने लगा। वह किसी की जान लेना चाहता था लकिन वह पागी के दो भाइया सन्नो और कमू को अपने स्थान से न हटा सका उन्होने किसी तरह नतकदल को सकेत किया कि वह सेन नत्य को उल्टे तरह से करें ताकि वह राक्षस भाग न सके नत्य और इसके साथ पवित्र धार्मिक मत्र का उच्चारण करें। सन नत्य सारी रात चलता रहा तो लोगों को राक्षस का एक बडा मतक शरीर देखकर आश्चय हुआ। इसी लिए वह सन नत्य को उल्टा नाचत हैं।

फराटी और डडारस लोक नृत्य—ये नत्य सरल शली मे हैं। ये नत्य किसी उत्सव या सस्कार जन्म, विवाह फसल काटने पर थकने पर प्रदर्शित होते हैं। इस नत्य म पुरुष नाचते हैं। इस नत्य म अधिक दक्षता की आवश्यकता नही। खुशी प्रकट करने पर कोई बधन नही कोई सीमा नहा। इसलिए सभी नाचत हैं।

घुरेही नत्य—घुरेही नत्य म केवल स्त्रिया ही नाचती हैं। चम्बा म घर की अर्थात् ऐसी घरेलू बातें जो मनमुटाव वाली होती है इसलिए धीरे धीरे घुर घुराई ध्वनि मे गायी जाती हैं इसम लोकवाद्यो एव गीतो के साथ नाचा जाता है। इसे प्राय दा प्रकार से नाचा जाता है। प्रथम शली म स्त्रिया घेरे मे खडी होकर नाचती हैं। इसके साथ गाये जाने वाल नत्यगीता म प्राय नारी का नख शिख वणन होता है। नतन करती हुई स्त्रिया एक दूसरे की ओर भाव भरा लयात्मक सकेत भी करती जाती हैं और लोकगीत भी गाती जाती हैं। नत्यगीत स्वय प्रश्नोत्तर के रूप म गाया जाता है। रोष और उपालम्भ की बानगी का अपना ही मजा है—

हीर तां धीया बापुए, नेड नेडें दित्तिया
हऊं दित्ती वो बापुए रावियां दे पार हो

या—बिस्सू ता बिस्सू आया पजे सत्ते
म रे बापू सादा नी आया हो

डागी नत्य—यह लोक-नत्य भी स्त्रियो म अधिक लोकप्रिय है। यह नत्य धुरेही नामक नत्यगीत क साथ प्राय किया जाता है। घुरेही नत्यगीत प्रश्नोत्तर शली म ही आग बढता है। इसम किसी हरिजन लडकी के प्रति किसी राजा क प्रम का चित्रण है। इसमे लोककथाओ के स्थान पर लोकगीतो को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस नत्य म नतक एक गाल दायरे मे एक दूसरे से बाहे मिलाकर नाचत हैं।

घोडायी नत्य—यह लोक नत्य भी स्त्रियो म अधिक प्रचलित है। इस नत्य म नतक दल दो दायरा म नाचता है। शरीर के ऊपरी भाग को आधी गोलाई मे घुमाते हुए पगगति पर लोच देत हैं। नाचत हुए ताल और गीत की लय पर बाहें उठाना, झुलाना और बारी-बारी म दोनो दायरो का लोकगीत की पक्तिया उठाना घोडायी नत्य की एक विशेपता है।

झाक्षर नत्य—यह लोक नत्य चम्बा का परम्परागत नत्य है। इस लोक-नत्य म स्त्री पुरुष दानो साथ नाचत हैं। इस लोक-नत्य म पहला घेरा स्त्री नतको का होता है और उनके घेरे के बाहर एक बडा वत्त पुरुष नतक बनात हैं। किसी ने ठीक ही कहा है कि यह लोक-नृत्य सूरजमुखी पुष्प की भाति खिलता और सिकुडता है। यह नत्य धीरे धीरे आरम्भ होकर समय पाकर इस नृत्य म गति आती है। नतक दल अपनी नतन मुद्राओ म परिवतन भी लाते हैं और स्थानातरण करत हैं। लोकवाद्यो की सुदर लय बढाई जाती है जिससे नतन मे गति और मस्ती आती है।

छिनजोटी नत्य—यह नत्य भी एक दायरे म नाचा जाता है। नतक कभी एक ओर कभी दूसरी ओर झुकते हैं। कभी एक ही जगह कदम टिकाकर शरीर के प्रत्येक अग को लयात्मक रूप से नृत्यगीत की तान पर शरीर हिलाते और नचाते हैं। इस नत्य के साथ प्राय छिनजोटी नत्यगीत गाया जाता है, जिसम प्रेमातुर गद्दिन अपने गद्दी को ममस्पर्शी पक्तियों म स्मरण करती है।

मगवाली नत्य—यह लोक-नृत्य विवाह सम्बध स्थापित करन के अवसर पर विवाह या लडके की बधाई के अवसर पर प्रदर्शित होता है। इस नत्य म सभी छोटे-बडे, अमीर गरीब बिना जातपात के भदभाव के नाचत हैं। इस नृत्य म दक्ष नतको की जरूरत नही पडती। औरतें भी नाचती हैं परतु वे पुरुषो से अलग नाचती हैं। कई जगह तो औरतें घर से बाहर नही घरो क अदर ही नाचती हैं। इस नत्य के एक रूप म नतक या गायक दो दलो म बट जात हैं, बीच म काफी खाली जगह नतको क लिए छोड देत हैं। फिर एक अय दल का एक नतक नाचता

हुआ उठता है और गाकर प्रस्तुत प्रश्न का नाचता हुआ मध्य म आकर गाकर उत्तर भी देता है। दोनो नतको की दो दल मे बठे लोग अपनी ओर के गाने मे स्वर से स्वर मिलाते है । यह सिलसिला दर तक चलता रहता है।

चुराहा नत्य—यह लोक नत्य झाझर नत्य से मिलता जुलता है इस नत्य म स्त्री पुरुष समान रूप म भाग लेते हैं, परन्तु अलग दल म नाचते हैं। प्राय स्त्री नतक दल के चारो ओर पुरुष नतकदल नत्य करता है। स्त्री और पुरुष नतकदल की ताल परस्पर प्राय नही मिलती। स्त्री नतकदल अपने नत्य गीत की ताल पर नाचती है और पुरुष अपने नत्यगीत की ताल पर। दोनो दल नत्यगीत बदलने के साथ गति भी उसके अनुकूल बदलते हैं। ज्यो ज्यो नाच समाप्त होने लगता है नृत्य की गति भी तीव्र होती जाती है और नत्य म उछल-कूद और जोश बढ जाता है। यह नत्य प्राय 2 3 घण्टे तक चलता रहता है।

साथी नत्य—इस नत्य म स्त्री पुरुष साथ भी नाचते हैं। इस नत्य म दल एक दायरे म नाचते हुए अपने बायें हाथ के साथी का हाथ पकडकर दायें ऊपर उठा कर नाचता है। कभी कदम आगे कभी पीछे कभी शरीर आगे झुकाकर नतक नाचते हैं। शरीर का सचालन और हाथ का नाचना अत्यन्त आकषक लगता है। कदम और शरीर का सचालन लोक गीत और लोकवाद्या के उतार चढावा पर चलते हैं। प्राय नत्य का आरम्भ धीमी गति से होता है, परन्तु धीरे धीरे गति तीव्र हो जाती है।

अचली लोक-नत्य—दिन भर की थकान को दूर करने के लिए लोक-नत्य और लोक वाद्य ही है। इस अवसर पर अचली आरम्भ होता है। अचली एक प्रकार का धार्मिक गीत है जिसके अनुरूप लोक-नत्य भी चलता है। चार विशेष लोकगायका मे से एक ढोलक, दूसरा थाली जो घडे या पात्र पर रखी जाती है, जिसमे पानी डाला जाता है। दो गायक गीत आरम्भ करते है और दूसरे दो गायक (थाली वाले) उसे दोहराते हैं। फिर एक या दो नतक बारी बारी नाचते हैं। इसमे विशेष वेश भूषा की आवश्यकता नही। धीरे धीरे गीत के साथ साथ नत्य भी तेज हो जाता है।

इसी तरह घास काटने के समय या खेती काय के समय भी यह क्रिया की जाती है तब इसे थाली का नाम दिया जाता है। विवाह या नवाला उत्सव पर इस नत्य का विशेष आकषण रहता है।

घुघर नत्य—विवाह, चौर्वी नवाला और अन्य उत्सवो के अवसर पर परम्परागत वेशभूषा म लोक-नतक महिलाए आगन या खुली जगह पर एकत्रित होकर दायरे म घूमते हुए द्रुतगति से नत्य और गायन करती हैं। दो मडलिया गायन करती हैं। प्रथम मण्डली गीत की कुछ कडिया गुनगुनाती हैं। दूसरी पक्ति उन्हें दोहराती हैं और नाचती भी जाती हैं। पाव की थिरकन और अन्य भाव

भंगिमाएं अत्यंत आकर्षक होती हैं। बीच की नर्तकी अपनी दोनों ओर की नर्तकियों से बारी-बारी नर्तनमय अभिनय के लिए सम्पर्क बनाए रखती है। एक दूसरे के हाथ से ताली बजती रहती है। यह नृत्य विशेष परम्परागत वेश भूषा में होता है। स्थानीय आभूषण सुथ्रांचड़ी, चूड़ीदार पायजामा, कढ़ाईदार दुपट्टा, कमर में गात्री (काली ऊनी रस्सी), मांग पर चांदी का मांगटिक्का (चिड़ी) पहन कर नर्तकियां आकर्षक लगती हैं। गले में विभिन्न प्रकार की चांदी और कपूर की मालाएं (डाड माला, जौ माला, मणका माला) कान में चांदी के झुमके, बाटे और बालियां पांव में पायजेब पहनती हैं।

छतराड़ी नृत्य—यह पुरुषों का सामूहिक नृत्य है जो खुली जगह पर प्रदर्शित होता है। इस नृत्य में भी स्थानीय परम्परागत वेषभूषा आवश्यक समझी जाती है। यह प्रायः छतराड़ी जात्रा उत्सव के समय नाचा जाता है। यह जात्रा मणि महेश मेले के दूसरे दिन आरम्भ होती है और तीन दिन लगातार चलती है। यह लोकनृत्य भी तीन दिन चलता है। यह नृत्य दोपहर के समय दो-तीन घंटे चलता है। नर्तक दायरे में नाचते हैं। नर्तक सिर पर नोकदार ऊनी टोपी पहनते हैं जिस पर नील पक्षी की कलगी लगी रहती है। नर्तक ऊनी चोला पहनते हैं। कमर में ऊनी काली गात्री पहनते हैं, इसके साथ एक रंगदार बटुआ (मडुआ) पहनते हैं और साथ ही लोहे का रणका।

नर्तकों के पांव एक साथ चलते हैं और साथ में हाथों का अभिनय संगीत की ताल पर। इस नर्तन के लिए परम्परागत वेश भूषा और आभूषण पहनना जरूरी समझा जाता है। नाचने के साथ लोकगीतों की कड़ियां भी लोकनर्तक द्वारा दोहराई जाती हैं। इसी प्रकार का भरमौरी नृत्य भी है, जो भरमौर जात्रा पर नाचा जाता है।

हड़नात्र या हरनात्र नृत्य—यह लोक-नाट्य भी है और लोक-नृत्य भी। यह अधिकतर पियूहर वसु, लिलह और साहो गद्दी जनपद में अधिक लोकप्रिय है। यह कुल्लु के हरण नृत्य की भांति नाचा जाता है। प्रायः होली के दिन किसी मंदिर में पात्र लोकनर्तक अपने आपको चन्द्रोली, हिरण, खप्पर, जोगी और गद्दी विशप के रूप में सजाते हैं। चन्द्रौली के लिए पुरुष पात्र स्त्री की वेषभूषा में सजता है। खप्पर पुरुष मुखौटे पहनते हैं और गीत के साथ नृत्य करते हैं। एक पुरुष पात्र जोगी की वेशभूषा धारण करता है, जो अपने हाव भाव और बातचीत से लोगों को हंसाता है।

हड़नात्र के पात्र लोकवादकों के पीछे पीछे जुलूस में चलते हैं और घर घर जाकर उस रात नाचते और गाते हैं। सुबह होते ही यह लोकनाट्य भी समाप्त हो जाता है। घर घर जाने से जो अन्न मिलता है।

मुखौटा नृत्य—छतराड़ी जात्रा के प्रारम्भ में बटुक महादेव की रथ यात्रा

कागडा क्षेत्र के लोक-नृत्य

कागडे या टिल्ल ओ अडेया, कागडे दा टिल्ला,
हिमाना इसदे आस ओ अडेया, कागडे दा टिल्ला।

पहली नवम्बर 1966 तक कागड़ा पजाब का एक जिला रहा।

जहा कागड़ा हमीरपुर और ऊना क्षेत्र कागडा चित्रशैली एव वीरता के लिए इतिहासप्रसिद्ध रहे वहा लोक नृत्य की परम्परा अब अधिक लोकप्रिय नहीं रही। कागडा क्षेत्र के हिमाचल प्रदेश म पहली नवम्बर 1966 को मिलने से पहले तक कुल्लू और चम्बा के लोक नत्य भी इस क्षेत्र म अत्यत लोकप्रिय रहे हैं और अब भी हैं। फिर भी कुछ लोक-नत्य इन क्षेत्रो म प्रचलित रहे जो प्राय झीरा जुलाहा जागिया या स्त्रिया तक ही सीमित रहे। कागडा के लोक-नत्यो के विभिन्न रूप मिलत है जिनमे—(1) चन्दरौली या मन्दूल नत्य (2) झमाकडा नत्य (3) भगत नत्य (4) गुग्गा-नत्य (5) रास-नत्य (6) गिद्धा-नत्य मुख्य हैं। इनम अधिक लोक-नत्य धार्मिक नत्य ही हैं।

(1) चन्दरौली नत्य—इस लोक नत्य का प्रचलन प्राय शीतऋतु म रहा। इसम भाग लेने वाले इस क्षत्र म बसने वाले प्राय झीर और जुलाहे हात है। इस नत्य म रौनू कलाकार बन-ठनकर नाचता है और तबलची लोकगायक और छणिया वाल इस नत्य म रग और रस भरत हैं। केवल एक स्त्री-पात्र चन्दरौली हा इस नत्य की मुख्य कलाकार है। ये दो मुख्य पात्र कृष्ण और राधा का रूप धारण कर हास विलासमय मुद्रा म मस्त होकर नाचते हैं और शष पात्र ग्वाला की तरह इनके इद गिद नाचत हैं। पालमपुर क्षेत्र म इसी लोक-नत्य का मन्दूल बोलत हैं। इन लोक-नृत्या के साथ मुख्य नत्य-गीत माता दिया भेटा, भजन और ऋतुगीत गाय जाते हैं।

(2) झमाकडी नत्य—झमाकडी नत्य प्राय विवाह शादी के अवसर पर ही आयोजित किया जाता है। दूल्हा या दुल्हन को तल बुटेणा लगाकर नहा धोकर स्त्रिया तार चाचिया और अन्य सम्बधी स्त्रिया आटे का नानू बनाकर लाल कपडे लकर मटक मटककर नाचती हैं। दूसरे पक्ष की स्त्रिया नाचती हुई नानू को छुडवाने का प्रयत्न करती हैं। देखन वाल हसते हसते लोट-पोट हो जाते हैं।

नाचने वाली स्त्रियां नानू की झलक (झमाकड़ी, छमाका या फलासा) दिखाकर फिर उसे छिपाकर नाचती हैं। इसमें गीत और नाच दोनों साथ चलते हैं।

(3) भगत नृत्य—इस लोक-नृत्य को जीवित रूप में रखने का श्रेय इस क्षेत्र के सीरा और चमारों को जाता है। इसमें भाग लेने वाले मनखों या भगतिए बोलते हैं। इसकी कथावस्तु भी कृष्णलीला के साथ जुड़ी हुई है।

इस नृत्य का आरम्भ भी आरती से होता है। फिर विशेष वेशभूषा पहनकर हाथ में डण्डे बजाता हुआ एक नर्तक आता है और अपनी बात कथा द्वारा सुना कर दर्शकों का मन रिझाता है। इस नर्तक को भी मनसुखा या भगतिया या रौलू कहते हैं। साथ में कृष्ण और गोपियां अपनी लीला रचने लगते हैं। जाति और क्षेत्र के अनुसार इसमें कुछ अंतर भी आ जाता है। यह लोक नृत्य रात को होता है। नर्तक कई रूपों में नर्तन करते हुए इसे आकर्षक बनाने का प्रयत्न करते हैं। इस लोक नृत्य के अन्य रूप लोक-नाट्य के रूप में प्रदर्शित होते हैं।

(4) गुगाहल या गुग्गा नृत्य—कांगड़ा क्षेत्र में गुग्गा-पूजा प्रचलित है। नृत्य का भी सीधा सम्बन्ध गुग्गा पूजा से है। प्रायः जोगी लोग ही इसमें भाग लेते हैं। जोगी लोग रंग बिरंगी डोरियां लटकाकर हाथ-पैरों में राख मलकर हाथ में छत्री और लोहे की सोठी के गम्भीर मुद्रा बनाकर दमातर, ढोल नजा मार मुठे झुला-झुलाकर नाचते हैं। जब ढोल की ताल जोर पकड़ती है तो नृत्य में भी स्फूर्ति आती जाती है।

(5) रास-नृत्य—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस नृत्य का सम्बन्ध कृष्ण लीला से है। कांगड़ा क्षेत्र में 1949 तक यह लोक-नृत्य मरासी और गुसाई लोग रचाते थे। रास-नृत्य आरती से आरंभ होता है। नर्तक कृष्ण के आगे प्रार्थना करते हैं। रास-नृत्य करते हुए गीतों के भाव, रास के लोक नर्तक हाथ पर या मुंह या शरीर के अंगों को हिला झुलाकर अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं। इसमें नर्तकी का नाचना गाना मटकना नखरे करना ही सबसे आकर्षण है। मनसुखा नर्तक के आगे पीछे नाचता और गाकर कृष्ण की तरह गोपी को रिझाने का प्रयत्न करता है।

(6) गिद्धा नृत्य—इसका रूप पंजाबी गिद्धे की ही तरह है। इसे कई जगह नाच या स्वांग-नृत्य भी कहते हैं। इस नृत्य में स्त्रियां गोलाई में नाचती हैं। इसमें सम पर आने के बाद पहले गीतपंक्ति के उतरते ही स्त्रियां हाथ की तालियां पर तेजी से गिद्धा डालती हैं। इसमें ढोलक ही बजायी जाती है। यह कई प्रकार से नाचा जाता है। कभी-कभी यह नृत्य स्त्रियां बन्द कमरे में भी करती हैं। सुजानपुर टीहरा एवं पालमपुर क्षेत्र में यह लोक नृत्य अधिक लोकप्रिय है। यह नृत्य विवाह शादी और होली के अवसर पर भी किया जाता है।

इस क्षेत्र के लोक-नृत्य की परम्परा समय की गति के साथ धूमिल पड़ती जा

रही है जिसका विशेष कारण यही लगता है कि इस क्षेत्र में राजनैतिक परिवर्तन, सांस्कृतिक उथल पुथल और जकड़न, जातिवाद का प्रभाव कुछ ऐसे रहे हैं कि लोक नृत्य की परम्परा पिछड़े या निम्न वर्ग की जातियों तक ही सीमित रही। ऊँची जाति के लोग इन लोक-नृत्यों को विशेष आदर की दृष्टि से नहीं देखते थे। इसी प्रकार स्त्रियां लोक-नृत्यों को साधारण जनसमाज के सामने प्रदर्शन करना ठीक नहीं समझती थी। इस क्षेत्र में गोरखा-नृत्य और हिमाचल प्रदेश के अन्य लोक नृत्य भी बड़े उत्सवों पर प्रदर्शित किये जाते हैं।

पहला नवम्बर 1966 के दिन कांगड़ा, ऊना, हमीरपुर, सोलन क्षेत्र के हिमाचल प्रदेश का एक अंग बन जाने से इस क्षेत्र की लोक कला जीवन को एक नया निखार मिला है जो सांस्कृतिक विकास का द्योतक है।

बिलासपुर एवं मंडी के लोक-नृत्य

बिलासपुर और मंडी क्षेत्र के लोक-नृत्य मिलते जुलते हैं जिनमें नाटी, गिद्धा, स्वांग, भजन और रास के नाम लिए जा सकते हैं। इन लोक नृत्यों पर पंजाब के लोक-नृत्यों का प्रभाव भी स्पष्ट है। गिद्धा शायद हिमाचल प्रदेश के पंजाब के साथ लगते कुछ सीमावर्ती जिलों में प्रचलित है। मंडी के ग्रामीण क्षेत्र में प्रायः कुल्लू से मिलते जुलते लोक-नृत्य भी प्रचलित हैं।

गिद्धा नृत्य—यद्यपि पुरुषों का इन लोक नृत्यों में शामिल होना वर्जित नहीं है, फिर भी इस नृत्य में प्रायः स्त्रियां ही भाग लेती हैं। नर्तक के लिए सलवार कुर्ता और सिर ढांपने का वस्त्र काफी है। झांझर भी पहनी जाती है ताकि नृत्य के समय आकर मधुर ध्वनि गुंजरित हो। गिद्धा के लिए गिद्धा लोक-नृत्यगीत ही ढोलकी के साथ गाये जाते हैं। गिद्धा नाचने के लिए ढोलक बजाने वाली स्त्री को घेरकर नाचते हैं। नाचते हुए नर्तक और दर्शक दोनों तालियां बजाते हैं। नृत्य का आरंभ धीमी गति से होता है और समाप्ति पर तीव्र हो जाता है।

नाटी नृत्य—नाटी लोक-नृत्य और लोकवाद्य को भी कहते हैं। इस लोक नृत्य में आयु स्त्री पुरुष ऊंच-नीच का कोई भेद नहीं रखा जाता। यह लोक नृत्य खुले स्थान पर प्रदर्शित होता है। वैसे तो इस नृत्य के लिए कोई खुशी का अवसर हो सकता है, पर फिर भी प्रायः फसल काटने के बाद लोग नाचते हैं। लोकगीत के साथ लोकवाद्य भी बजते हैं। इस नृत्य में कदम ताल और हाथ का प्रदर्शन प्रमुख आकर्षण है।

स्वांग लोक-नृत्य—स्वांग को भी कई लोगों ने लोक-नृत्यों में शामिल किया है पर वास्तव में यह करयाला, बांठड़ा, देवधान इत्यादि का ही दूसरा नाम है। निःसन्देह इसमें लोक-नृत्य, लोकगीत और लोकवाद्य भी एक आवश्यक अंग है। इस नृत्य की शैली स्थान-स्थान पर बदली मिलती है। इसमें शामिल होने के लिए

दश ननक की आवश्यकता होती है। यह नत्य प्राय विवाह इत्यादि क समय प्रदर्शित होता है। इसे लोक नाटय के रूप म भी प्रदर्शित किया जाता है।

भजन कीर्तन-नत्य—शहरी क्षेत्र मे लोग धार्मिक अवसरो पर एकत्रित होकर कीतन का आयोजन करते हैं इस कीतन म स्थानीय देवी देवता या हिन्दू देवी देवता की अराधना के गीत गाय जात हैं। ज्यो ज्यो वातावरण पर भक्तिरस का प्रभाव बढ़ता जाता है भक्ति से अभिभूत कुछ भक्त लोग आत्म विभार होकर नत्य करने लगत हैं। इसम कोई शली नही कोई कदम-ताल का बधन नहीं। भजन की लय पर कोई भी किसी तरह नाच लता है।

रास नत्य—रास नृत्य केवल व्यावसायिक मडलिया ही प्रदर्शित करती है। इसम 10 स 15 नतक भाग लते हैं। यह नत्य 6 तरह स किया जाता है। इसका आरभ कृष्ण स्तुति से होता है। कृष्णलीला इसका प्रधान अग है। यह ग्राम्यक्षेत्र म अधिक लोकप्रिय नही। अन्य लोक-नत्यो का जिक्र अयत्र हो चुका है।

किन्नौर के होरिगफो की तरह मण्डी क्षेत्र का लोकनाटय बाठडा भी प्रसिद्ध है।

शिमला क्षेत्र के लोक-नृत्य

हाय मामा तेर नाकौ री तिली, हाय मामा
झूरी लागि बोलो नाचदि मामा, चई सुपने मिली हाय मामा
हु दो बोलि ला शिमला मामा, ऊबा बोलणा जाखा, हाय मामा
तेर खाया बोलो लोभल नयण, घोरो जोगा न राखा, हाय मामा

शिमला जनपद प्राचीन काल से घने वनो, बर्फीली चोटियो नदी-नालो हरी भरी चरागाहो और जगली जानवरो से भरा पडा था। इस क्षेत्र म समय समय पर मावी मवाणा, खश, कोल नाग किरात जातियो ने निवास किया। यही नही, ऋषि मुनियो देवा-देवताओ की तपोभूमि रही।

इतिहास म कुलिन्द जनजाति का इस क्षेत्र पर अधिक दर तक आधिपत्य रहा। दो शताब्दी तक उनका प्रभाव रहा। तीसरी शताब्दी ईस्वी म बुशहर और कुल्लू जनपद का प्रभाव इस क्षेत्र पर अधिक रहा। गुप्त साम्राज्य क पतन के साथ ही इस क्षेत्र म छोटी ठकुराईया और जागीरदार उभरने लग। अगली कई शताब्दियो तक उनके परस्पर गह युद्ध षडयत्र और शासन चलता रहा। शक्तिशाली जनजाति कमजोर पर शासन चलाती रही।

गोरखा आक्रमण क समय 18वी शताब्दी म क्योथल रियासत का प्रभाव भी फलने लगा। तब तक इसके प्रभाव क्षेत्र म कोटी, भज्जी थयोग घूड बलसन, कधान धामी और रतश जसी छोटी छोटी ठुकराइया आ चुकी थी। इसी तरह जुब्बल सारी रावीगढ दरकोटी खनेटी, देलठ करागडा, ढाडी थरोच शागरी, भरोली कोटखाई-कोटगढ भी स्वायत्त प्रशासक के अधीन थे।

गोरखा की पारजय के बाद कोटखाई कोटगढ का शासन 1927 म अग्रेजो ने ल लिया और इसी तरह शिमला भरोली भी ब्रिटिश क्षेत्र बन गया। ब्रिटिश सरकार ने शिमला चायल जतोग इत्यादि क्षेत्र भी ल लिए।

1863 ई० मे ब्रिटिश शासन ने शिमला को ग्रीष्मकालीन राजधानी घोषित कर दिया। धीरे धीरे अग्रजो की सुदर कोठिया राजा राणाओ एव अमीरो ने शिमला म भव्य भवनो का निर्माण किया। इर्द गिर्द सडकें बन गइ। इसके कारण

शिमला 'पहाड़ों की रानी' बन गया।

शिमला जनपद के लोग 21 छोटी बड़ी रियासतों के अधीन शोषित और पीड़ित होते रहे। प्रत्येक छोटा शासक अपने राज्य को देश समझता था इस प्रकार जनता हर कदम पर विभाजित रही।

इस प्रकार शिमला जनपद अनेक उतार चढ़ावों से जूझता रहा। कभी पंजाब में कभी हिमाचल में स्थानान्तरित होता रहा। अंतिम रूप में सारे शिमला क्षेत्र की रियासतों और राजकीय क्षेत्र को एक स्वरूप दिया गया और शिमला जिला का वर्तमान स्वरूप उभरा। एक सूत्र में बंध जाने से अनेक एक जैसी सांस्कृतिक और कलात्मक परम्परायें उभरीं।

शिमला और सिरमौर जनपदीय क्षेत्र के लोक-नृत्यों में कोई स्पष्ट विभिन्नता नहीं। केवल कहीं कहीं कुछ स्थानीय पुट जैसे नामकरण या वेशभूषा में फर्क आ गया है।

इस क्षेत्र के लोकप्रिय वाद्यों में खंजरी गुज्जु (डमरू) खड़ताल नगाड़ा, ढोलक, शहनाई, करनाल और नरसिंहा है। प्रत्येक ग्राम-देवता या क्षेत्रपाल देवता के साथ प्रायः यह सब लोकवाद्य स्थाई रूप से रहते हैं जिन्हें परम्परागत कुशल लोक वादक ढाकी, तुरी या बाजगी बजाते हैं।

इस जनपदीय क्षेत्र के लोक-नृत्यों में ढीली नाटी, फूकी नाटी, लाहौला भगोला माला घुघती प्रयाण (विरसू बीशू या जोध) दिवाली, तुरिण (ढाकणी या बजागी) रोडा जोनी मुजरा इत्यादि के नाम गिने जा सकते हैं।

नाटी नृत्य—क्षेत्र भेद से इनकी संख्या और नामों में अन्तर और क्रम भेद भी हो सकता है। नाटियों का नामकरण उनकी तालों पर हुआ है जैसे कहरवा, दादरा, चाचर, तीन ताल आदि।

जाऊ कौरे हायडू लाणा धौरमा
नाटीए नाचद लागा शौरमा (हीरा कमला)

नाटी लोकगीत भी है और लोकवाद्य एवं नृत्य शैली भी। यह सात प्रकार का नृत्य है। ढीली नाटी फूकी नाटी लम्बी नाटी, डियउड़ी नाटी, ताउड़ी नाटी और कडमाऊ नाटी। प्रमुख अन्तर गति और तदनुरूप नृत्य गीत का है।

ढीली नाटी—ढीली नाटी लोक-नृत्य में लोकवाद्य बड़ी धीमी लय और ताल में बजाये जाते हैं और उसी धुन के अनुकूल नृत्यगीत गाये जाते हैं। उदाहरणतः इस नृत्यगीत की दो पंक्तियां लीजिए—

मेरिया ठ्योगा चतर देशा, कौंलरामा चतर देशा।
खाचरी गाशौ भौहिंदा बेशा, कौंलरामा भौहिंदा बेशा ।।
सधरी धारी दे खौंडुए चण, कौंलराम खौंडुए चणे।
साथौ र आदमी पन्दरह झोणे, कौंलरामा पन्दरह झोणे ।।

ऐसे लोक-नत्यो की गूज पर ही वाद्य बजत हैं और नतक शरीर के प्रत्येक अग को वाद्य और गीत की लय पर थिरकन देते हैं। इस नत्य मे प्राय पुरुष ही भाग लेते हैं। प्रत्यक पग वडी धीमी गति से आग बढता है। नतक ऊपरी शरीर के भाग का चारा आर नचात हुए झूमत है। नतकदल के आरम्भ म नाचन वाल को धूर का नतक कहते हैं। उसी क अनुसार शेष नतक नाचते हैं। वाद्य की ध्वनि पर पहल पहला कदम नीचे, फिर ऊपर, दूसरा नीचे, फिर ऊपर। यही क्रम चलता रहता है। यह लोक-नत्य मेलो मे ही प्रदर्शित होता है। सबका हाथ एक दूसरे की कमर पर होता है।

फूकी नाटी—फूकी नाटी म भी नतक दल आधा दायरा बनाकर खडे हो जाते हैं, परन्तु एक-दूसरे को छूते नही। नतक एक गोल दायरे म नाचत हुए अपने शरीर को चारों ओर घुमात हुए, आगे बढत हैं। यह नत्य भी पुरुषों का नत्य है और विशेष उत्सवो पर इसका प्रदशन होता है। इस नत्य की गति भी बडी धीमी होती है।

लाहौला भगावला नत्य—इस नत्य म लोग एक पक्ति म खडे हो जाते है। गीत और वाद्य की ताल पर इसम गति आती है। यह नत्य भी प्राय पुरुष ही नाचत हैं। नतक पहल दो कदम नाचते हुए पीछे हटत है और फिर खड होकर झूमत हैं। फिर ऊपर और थोडा झुकाना और पग आग यही क्रम चलता रहता है। लोकवाद्य और अनुकूल लोक गीत के बिना शायद ही कोई लोक-नत्य सफल समझा जाता है।

माला लोक नत्य—यह नत्य इस क्षेत्र का लाकप्रिय नत्य है। यह प्रत्येक उत्सव त्योहार विवाह देव यज्ञ और मलो म ही क्या प्रत्येक गाव के मदान या खलिहान मे साझ के समय प्रदर्शित होता है। यह लोक नत्य अन्य से सरल है। इसलिए यह लोक नत्य गाव के सभी स्त्री पुरुष बच्चे बूढ नाच लेते हैं। इसम स्त्री पुरुष साथ-साथ या अलग अलग दोनो तरह स नाचत हैं। सारे लोकवाद्य उपल ध न भी हा ता भी खजरी से गुजारा चल जाता है। नतक एक पक्ति म खडे होकर लोक गीत और खजरी की ताल पर पहले दाया कदम, फिर बाया कदम आग बढाकर नत्य क्रम जारी रखते हैं। नतक शरीर को आगे और पीछे झुकाते और एक दूसरे की कमर पर हाथ रखकर माला सी बनात हैं। लोक-गीत बदलन के साथ नतक की चाल और ताल मे भी परिवतन आ जाता है। लोक

गायक की जोडी पहले नृत्य गीत की पहली पंक्ति उठाती है और शेष माला में नाचने वाले उसी पंक्ति को दोहराते हैं। इसी प्रकार नृत्य-गीत आगे बढ़ता है और नृत्य चलता रहता है। कई बार लोकगायक माला के मध्य में धूरे में नाचने वाले के साथ गाते, खजरी बजाते और नाचते हैं और विशेष उत्सवों पर जैसे मेला इत्यादि पर यह काम ढाकी या तुरित स्त्रियां करती हैं।

घुघुती नृत्य—घुघुती-नृत्य में नर्तक एक दूसरे के पीछे एक आधा दायरा बनाकर खड़े हो जाते हैं और दोनों हाथ सामने वाले नर्तक के कंधों पर रखकर लोक गीत और वाद्यों की ताल पर सारे नर्तक गोलाकार में घूमकर नाचते हैं। इस नृत्य में घुघुती गीत की यह पंक्तियां प्राय दोहराई जाती हैं।

घुघुती घुघुती, घानों रे खेचा न चुगती
शुणा र लोगुवे घुघती, छौली रेखचावे चुगती
नाटों लागे बड़ी जुगती

इस नृत्य में कदमों की अपेक्षा शरीर की गति का महत्व होता है।

यह लोक-नृत्य भी प्राय पुरुष ही नाचते हैं और मेलों के अवसर पर कभी कभी यह लोक-नृत्य देखने को मिलता है। इसमें नृत्य की गति पहले तीव्र हो जाती है और फिर धीमी। यह नृत्य कुछ कठिन भी है। इसलिए बहुत कम इसका प्रदर्शन होता है।

छटटी लोक नृत्य—यह नृत्य अन्य लोक नृत्यों की अपेक्षा कुछ कठिन है। इसके लिए काफी पूर्वाभ्यास की आवश्यकता रहती है। यह नृत्य भी प्राय पुरुष ही नाचते हैं। इसलिए साधारण लोक नर्तक इस नृत्य को ठीक तरह से नहीं नाच पाते। इस नृत्य के लिए दक्ष नर्तक के साथ दक्ष लोकवादक की भी आवश्यकता रहती है। इस नृत्य के साथ नृत्य गीत यदि कण्ठों की अपेक्षा शहनाई पर भी गाया जाय तो भी काम चल पाता है। नहीं तो ढाकिण या तुरिण स्त्री के मधुर कण्ठ से निकले गीत की लय और ढोलक या नगाड़े की ताल पर भी यह लोक-नृत्य अत्यन्त लुभावना लगता है। इस नृत्य के लिए विशेष लोक गीतों को उतार चढ़ाव के साथ गाया जाता है। जैसे—

जोबनो दायिए लोए लवाई।
जोबनो दायिए लोवे लवाई॥
शिशिका देवी तु बली न आई।
बली न आई बली न आई॥

इस लोक-नृत्य में एक दूसरे के हाथ नहीं पकड़े जाते। नर्तक एक हाथ में

रूमाल लेकर और दूसरे मे खाडा या तलवार लेकर एक दूसरे के आगे पीछे गोल दायरे मे क्रम से खड होकर झूम झूमकर नाचते हैं। इसम कदमो का क्रम अत्यन्त जटिल होता है। धुर मे नाचने वाले नतक का अनुकरण करते हुए नतकदल के अन्य नतक नाचत हैं। इस नत्य की गति बडी धीमी रहती है।

प्रयाण, बिश बिरसू, युद्ध नत्य—इस नत्य म लोक नतक हाथ मे कोई डडा, रूमाल, तलवार या डागरू लेकर एक दूसर के पीछे या इधर उधर बिना क्रम के खडे होकर नाचत हैं। जब नतकदल देव मदिर से मेले के मदान म या अपने गाव स मेले के मदान तक या एक गाव स दूसरे गाव तक नाचते हुए आते और जाते है तब यह लोक नत्य प्रदर्शित होता है। इसम ढोल, नरसिंहा ढोलक, नगाडा शहनाई और करनाल इत्यादि वाद्य बजाते हैं। दो नतक प्रारम्भ स गाते हैं और शेष नाचत हुए आगे कदम बढाते और गाते जाते हैं।

> **ऊची जागह नाऊ औरी कीया हो मुहाला भाईयो**
> **सुता हुन्दा खौशिया जिलाकि न जाला भाईयो**

नत्य के बीच म कोई नतक बडी ऊची आवाज से चिल्लाते हुए कहता है—

> **ऊची जागहे रो फुलड फुलो ओ भाइयो।**
> **ऊची जागहे रा खौशिया पूजा ओ भाइयो।**
> **खूदो री बलि जाईलो भाइयो।**

और शेष गार लोग एक स्वर म शोर मचाते हुए कहते है—हो हो। इस नत्य म प्राय युद्धगीत (वीर गाते) ही गाय जाते है। यह नत्य तब तक चलता रहता है जब तक नतकदल मेले के मदान म या मदिर तक नही पहुच जाता।

दिवाली नत्य—यह नत्य दिवाली से पहले या दिवाली के दिन ही प्रदर्शित होता है। यह भी पुराना नत्य है। यह नत्य प्राय रात को ही नाचा जाता है। खुले मदान के मध्य म बहुत सारी लकडिया इकट्ठी कर उन्हे रात को जलाया जाता है और उसके चारो ओर लोग दिवाली नृत्य नाचते है। दो दो नतको की जोडी एक दूसरे की कमर पर हाथ रखकर दूसरे हाथ म मशाल या रूमाल लेकर ढोल या खजरी के साथ दिवाली के गीत गाते हुए नाचते हैं। इसम नतक बारी बारी दाए और बाए कदम उठाते छलागें लगाते हुए एक दूसरे के पीछे आगे बढते हैं और दायरे म नाचते हैं। नत्य के बीच कुछ अन्तराल बाद कहते हैं—

देवता। बले देवलिए।

दिवाली के नत्य गीतो म प्राय श्रीराम कृष्ण और राजा बलि के यशोगीत ही अधिक गाए जाते हैं। जग सीताहरण पर राम का शोकाकुल होना—

रामजी लाग ओं रुदे । रामजी लाग ओं रुदे ॥
जति सति बोलद लाग । जति सति बोलद लाग ॥
रुई नी भेड़ आ रामा । रुई नी भेड़ आ रामा ॥
रुई नी छेवड़ी री ताई । रुई नी छवडी री ताई ॥
छेवडि आणो मि तौंई । छेवडी आणो मि तौंई ॥

या फिर राजा बलि के विषय म यह दिवाली नृत्य गीत गाया जाता है

बलीं राजया जोगनो तेरे
बलीं राजया जोगनो तेरे
भेख तो बावणों रा कीया
भेखो तो बावणो रा कीया ।

ऐसे ही पौराणिक गीता को स्थानीय लाक गीतो क साचे म ढाला गया है। दशक लोग इहे बडी तन्मयता से सुनत हैं। कभी कभी दो दल छुने, छुलना या ठाम्वरु (घुटी) खेल भी खलत हैं। साथ मे गात हैं—

साबसे मेरिया हनुवा बीरा।
लाक री धारो दा जोंवदा फीरा॥

डुरिण नृत्य

इसम आगे की जोडी को लगडी देन की कोशिश करन क लिए तयार होकर नाचती है। पिछला दल मौका पाकर लगडी देकर गिराने की कोशिश करता है।

तुरिण या ढाकी नत्य—यह नत्य क्षत्र से तुरिण या ढाकिण स्त्रिया शुरु करती हैं। तूरी या ढाकी अपने क्षेत्र के देवी-देवता, राजा राणाआ और जनता के परम्परागत लोकनाट्क और लोकगायक रहे हैं और उनकी स्त्रिया व्यावसायिक रूप मे नृत्य करती रही हैं। ये स्त्रिया प्रत्यक ग्राम देवता के मदिर के सामने, अनेक बडे घरा क सामन, चमकदार और भडकीला चोनू या घाघरा पहनकर गाती हुई नाचती हैं और उनक पति वाद्य जसे ढोलक शहनाई बजात हैं। नए नए लोक गीत गाकर य अत्यत मनोहर नाचती हैं और इसके लिए उनको गाव वान कुछ अनाज और खाना प्रत्यक उत्सव और त्योहार पर दते हैं।

युद्ध नत्य या ठोडा नृत्य—यह नृत्य केवल कुछ विशष मेलो पर ही प्रदर्शित किया जाता है। इस नृत्य म धनुष-बाण चलाने म दक्ष पुरुष ही भाग लेत हैं। वे उनी कपडे का चूडीदार सुथन (पाजामा) और उसके ऊपर चमडे की पटी बाध कर नत्य करत हैं। इसम लोक गीत भी कभी-कभी गाये जात हैं। इस नत्य के लिए लोक-वाद्य की तान और लय युद्ध के बाजा की तरह होती है जिसे ठठोईर कहते हैं। इस नत्य म भाग लन वाला का ठठोरी कहत हैं। नगाडा, ढोलक गुज्जू शहनाई और करनाल लोक वाद्य बजाये जात हैं। इसम नतको क दो दल शाठा और पाशी बन जाते है। ठठोईर खेलने वाले नाचत हुए धनुष तानकर वाण (शरी) अपने सामने वाले उछलत हुए ठठोरी, जो नाचता हुआ अपने बाप दादा गाव-देवता या इलाके का नाम लता हुआ उछलता है और चीख मारकर अपने प्रतिद्वन्द्वी को ललकारता है, गुरु पूजा मरिया तरी जुवडी दा और यदि शरी न लगे तो दूसरा ठठोरी एसे ही ललकारता है ही, ही शीघी टुलक मरिय पट बाहणीये मेरी जुवडी दी। लोक-नृत्य का रग इसी तरह धीरे धीरे चलता जाता है। इसी तरह अनेक जाडिया नाचती रहती हैं। जा थक जात हैं उनका स्थान दूसरे जोडे ल लेत हैं।

जोली (भटयू) नत्य—यह लोक-नत्य वशाख की सक्राति से प्रारम्भ किया जाता है। इसम खजरी क अतिरिक्त अन्य कोई वाद्य नहा बजता। यह नत्य परम्परा अनुसार इस क्षत्र के हरिजन एकत्र होकर देव मन्दिर के सामने पहले देवता की यशोगाथा गाते हैं फिर स्थानीय वीर पुरुषा और सती स्त्रियो की वीरगाथा गात हैं। यह सिलसिला कई दिना तक चलता है। इस नत्य म सभी नतक एक गोल दायरे म खड हो जाते हैं और गात के साथ खजरी बजाते हुए नाचते हैं। दो नतक आरम्भ म गाते हैं और बाकी नतक उन पक्तियो को दोहराते हैं। इस नृत्य म नतक शरीर क ऊपर का भाग नचाता है। लोग एक-दूसरे के पीछ बाए से दाए और

नाचते हुए चलते हैं और गाते हुए कभी-कभी खडे होकर दायरे के भीतर की तरफ मुह करके खजरी बजा-बजाकर गाते रहते हैं। दर्शकों में से यदि किसी के परिवार के व्यक्ति की गाथा गाई जाती है तो वह खुश होकर गायक को इनाम देता है। शाम को श्रेष्ठ गायकों को पगडी पहनाई जाती है और कुछ पैसे और अनाज भी दिया जाता है। सभी गायकों को गाव वालों या देवता के भण्डार से खाना मिलता है। जोली नृत्य में गाये जाने वाले कथा गीतों की प्रथम पक्तिया इसी प्रकार शुरू होती हैं

> मूले री मलाईए होलि वेहरी मलाई।
> कोटे गाणि कागडे, हाटी रि दुर्गा माई।

यह नृत्य, प्राय दिन को ही होता है और केवल पुरुष ही इसमें भाग लेते है।

मुन्जरा नृत्य—यह नृत्य भी शिमला और सिरमौर क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय है। मुजरा नृत्य घरो के बाहर ही नहीं घरो के भीतर भी सभव है। इसमें भी प्राय पुरुष ही नाचते हैं। इस नृत्य में सब गायक, नर्तक और दर्शक एक गोल दायरे में बैठ जाते हैं। गायक दो जोडी में बंट जाते हैं। पहली जोडी मुजरा लोक-नृत्य की पक्तिया गाती है और दूसरी जोडी उन पक्तियों को दोहरा भर

देव नृत्य

लेती है। दोनो जोडियां खजरी बजाती हैं। अन्य वाद्य की आवश्यकता नही रहती, क्योंकि ढोलकी का सहारा भी ले लिया जाता है। खजरी की लोक धुन

और गीत की मधुर तान के बीच नर्तक धीरे धीरे उठता है और शरीर के प्रत्येक अग और विशेषकर हाथो को लहराता हुआ नाचता है। दर्शक मन्त्रमुग्ध होकर ताल और लय पर उनके सुन्दर अग-सचालन को देखते हैं। यह नृत्य अन्य उत्सवो के अतिरिक्त शिवरात्रि के भजनो के साथ भी नाचा जाता है। यह नृत्य भी इन क्षेत्रो के अत्यन्त लोकप्रिय नृत्यो म से है।

देव-नृत्य—दो दक्ष नर्तक हाथ म देवता का चौवर लेकर कन्धे पर देवता की पालकी लोक धुन की ताल पर नचाते हैं और दर्शक उनके इस मनोहर नृत्य का उठाते हैं। देवता की पालकी इधर उधर झुलाते हैं।

सिरमौर के लोक-नृत्य

चडी दा पौडी रौहा हियो, कि मामा मेरा,
लागा पहाडों दा जियो, कि मामा मेरा,
एरी घोलो सोपेणो पाडा यानो बागो,
गाय लाण साके लाई लेणी नारी रागो, कि मामा मेरा।

—लोकगीत

जिला सिरमौर का क्षेत्र मुख्यत पहाडी क्षेत्र है और 15 अप्रल, 1948 तक एक पहाडी रियासत था। इसके पूर्वी भाग को यमुना और तौंस नदिया देहरादून (उत्तर प्रदेश) से अलग करती हैं तथा दक्षिणी भाग को जगाधरी और नारायणगढ (हरियाणा) का क्षेत्र स्पर्श करता है। इसका पश्चिमी तथा उत्तरी भाग जिला शिमला और सोलन जिलो से मिलता है। 1141 वर्ग मील का यह जिला समुद्र तल से लगभग एक हजार फुट स लेकर 12 हजार फुट तक की ऊचाई वाले क्षेत्र म अब भी सैकडों वर्षों की विस्मृत समृद्ध सास्कृतिक तथा एतिहासिक बिखरी कडिया समेटे हुए है। सिरमौर का अधिक भाग चूकि शिमला जिला से सलग्न है, इसलिए इसके पहाडी क्षेत्र का अधिक सामाजिक और सास्कृतिक आदान प्रदान शिमला के पहाडी क्षेत्र के लोक-जीवन के साथ है। वह अधिकतर ग्रामीण जिला है।

सिरमौर के लाग सादा, कठिन परिश्रमी, विनम्र, शातिप्रिय और धार्मिक निष्ठा स भरपूर हैं। वष भर के कठिन जीवन मे सरसता लाने के लिए समय समय पर लोक गीत, लोक धुन और लोक-नृत्य इस क्षेत्र का मुख्य लोक-मनोरजन का साधन है।

इस क्षेत्र म लोक-नृत्यो मे अधिकतर पुरुष ही नाचते हैं। कुछ क्षेत्रो मे स्त्रिया भी नाचती हैं। स्त्रियों के नृत्य करने की भी एक परम्परा है। जिस गाव मे भी लोक-नृत्य होता है उस गाव की बेटिया (धन्टी) जो अन्य गाव म विवाहित होती है या अविवाहित होती हैं, वही उस गाव म नाच सकती है, अन्य नही। पर

कहीं कहीं अब यह बंधन नहीं और सभी स्त्री पुरुष साथ भी नाच लेते हैं।

सिरमौर के लोक-नृत्यों में यहां की प्राचीन संस्कृति, लोक-गाथायें मान्यताएं विश्वास परम्पराएं, इतिहास बोलता है। सिरमौर के लोक-नृत्यों में मुख्य हैं—गीह नाटी मुजरा खोड़ा, ठोडा ठठईर रास, स्वांगटे, रासा बुढ़ेच, पढ़वा, बूढ़ा इत्यादि। इनके अतिरिक्त अन्य पहाड़ी लोक-नृत्य भी बड़े चाव से प्रदर्शित किए जाते हैं। इस जनपद के बहुत सारे नृत्य शिमला जनपद से मिलते जुलते हैं।

गीह और मुजरा नृत्य—गीह का सीधा सम्बन्ध हमारी हृदय गति से है। ढोलक खंजरी खड़ताला वाद्यवृन्द हैं। गीह में पांच तालियां लगती हैं। 1 2, 3 खाली 4 5। गीह मुजरे (महफिल) में नाचा जाता है। मुजरा बीशू देव यज्ञ दिवाली शादी इत्यादि अवसरों पर शाम से सुबह तक लगता है। गीह गायनटी मुख्य नृत्य होता है। गीह नृत्य होता है। गीह नृत्य में नर्तक गाने वाले के मध्य में नाचता है। चेहरे छाती कंधे कमर के झुकाव और हरकतों से नाचने वाला गीत के बोलों के भाव स्पष्ट करता है। बांहें फैलाकर चक्कर मारना आवश्यक श्रम माना जाता है। मुजरे में गीह लगाने पर बारी बारी सभी इच्छुक नर्तक नृत्य करते हैं। कभी कभी ताल में झूरी सवाल-जवाब के रूप में सामाजिक कल्पना से परे तुकों में गाई और नाची जाती है।

नाटी—कुछ लोग गीह और नाटी में फर्क न मानकर एक ही नृत्य मानते हैं। किन्तु नाटी गीत का विलम्बित ताल है। नाटी को सभी गीह नाचने वाले नर्तक या नर्तकी नहीं नाच सकते। नाटी शहनाई ढोल छपी डंके पर, बड़े धीमे से नाची जाती है। नर्तक भावपूर्ण शैली में गीत के बोलों की अभिव्यक्ति करता है। नर्तक का चक्कर लगाना यहां भी अनिवार्य है।

ठठईर ठोडा नृत्य—ठठईर रयवला ताल में नाचा जाता है। क्योंकि कभी एक कबीला दूसरे कबीले या जाति का दुश्मन रहा है। जब लोग एक-दूसरे पर हमले के लिए जाते थे तो यह रयेवला ताल बजाया जाता था। लोग हाथ में डांगरू (गंडासा) डण्डा तीर कमान लेकर नाचते झूमते ललकारते हुए प्रतिद्वन्द्वी की ओर बढ़ते थे। आज भी बीशू, रिहाली जान मोण में लोग रयेवले में नाचकर एक विशेष स्थान में जाते हैं। यह नाचने वाले अलग-अलग होते हैं जिन्हें खूंद कहते हैं। ये खूंद कुछ शाठा कुछ पाशा होते हैं। फिर मोटे-मोटे पायजामे पहनकर कमान से एक-दूसरे पर टांगों में गोड पर निशाना लगाते हैं। निशाना लगाने पर निशानची बड़े झूम-झूमकर हाथ में कमान उठाए नाचता है।

रासा नृत्य—यह नृत्य क्रमबद्ध नाचने का रूप है। लम्बी कतार में कदमों को

आगे पीछे ताल म रखकर नाचत हैं। साथ घूमना, बठना, मुडना आवश्यक नत्य विधि है। रिहाली, दिवाली मे यह नत्य दिन के समय या रात म खुल आगन म किया जाता है। यह नत्य एकता का प्रतीक है। अनुशासन का सहज म ठास स्वरूप अतीत और वतमान के सम्बधो को मजबूत कर भविष्य म सगठन की साकार कल्पना लिए यह नत्य मनोरजन प्रदान करता है।

स्वागटेंगी नृत्य—यह नत्य दिवाली का नत्य है। दिवाली, बूढी दिवाली, चडेवली, इत्यादि म लोग स्वाग लगाते हैं और हुडक, नगारा दमामा के साथ झूम झूमकर नाचते हैं। शर, बाघ इत्यादि जानवरा के लकडी के मुखौट पहनकर जगली जानवरा का वेश बदलते हैं और उछल उछलकर नाचत-गात हैं। नतक जगली के रूप म स्वछन्दता स नत्य करता है। दिवाली आदि पव पर गाव की औरतें मुखौटे पहने हुए व्यक्ति को अखरोट भेंट करती हैं।

घरेवणी नृत्य—यह नत्य केवल देव नत्य माना जाता है। जब देवता किसी व्यक्ति म आता है, तो वह घरवणी लाक, ताल म बसुध नाचता है। इस क्रम को हिगरना, आघरना कहत हैं। जातरा, शात, घेरशी देव काय होत हैं। शुभ अवसरो पर यह देव-नत्य होता है। सामान्य अवसर पर किसी भी व्यक्ति द्वारा घरेवणी म नाचना देव अवना मानत हैं।

द्रौड़ी नत्य—यह भी देव-नत्य है। पाजडा, भारतो पोआडा गाने पर पाप, नेवा, देवी इत्यादि कई छोट छोटे देवी-देवते हिंगरत हैं। ढूल्की या हुडक, ख जरी लिए गान वाले भी झूम झूमकर नाचत रहत हैं। यह इष्ट देव की मानता क लिए घर म ही आयोजित होता है। मनोरजन का सामान्य क्रम नहीं होता। यह किसी काय सफलता की मानता होती है। द्रौड़ी हरिजनो म दव अराधना हेतु देव-यत्न माना जाता है।

घड़वा नत्य—यह नृत्य शादी के अवसर पर किया जाता है। औरतें नाटी, गिधे नाचती है। यह केवल औरतो का नाच है। मद इस नत्य म नतन नहीं करते।

बूढा नत्य—इस लोक नत्य म 10 स 15 तक नतक भाग लेते हैं। तीन या चार लोकवादक हुक वाद्य बजात हैं और शेष नतक डागरें हाथ म लेकर और उन्हे घुमाते हुए नाचत है। नतक स्वय भी नत्य-गीत गात हैं। इस नृत्य म शरीर को हिलाना, कदम, ताल, तलवार या डागरा हवा म घुमाना, गोलाकार दायरे में नाचना, गाना और कूदना शामिल है।

थाली नत्य—वस तो यह नत्य जोनसार बावर म अधिक लोकप्रिय है किन्तु शिमला और सिरमौर के कुछ क्षत्रा म यह लोक-नृत्य कभी-कभी प्रदर्शित होता है। कास की थाली हाथ म लेकर नतक एक दायरे म आग और पीछे

झुकते हुए छोटे और धीमे पग रखते हुए मिलकर गाते हुए नाचते है। यह नत्य प्राय बसत ऋतु या किसी उत्सव पर नाचते हैं।

इसके अतिरिक्त सिरमौर और शिमला के जनपदीय क्षेत्र म करियाला लोक नाटय म भी अनेक लोक नत्यो का प्रदशन होता है।

इसी प्रकार के अय लोक-नत्य यहा के लोक जीवन म नया उत्साह नये प्राणो का सचार करते हैं।

लोक-नर्तकों की वेश-भूषा

रग रग के चीरो से भर अग, चीरवासा-से
द य शू य मे अप्रतिहत जीवन की अभिलाषा से

—पत

विशेष अवसर के लिए लोक-नर्तक दल बढिया किस्म क आकषक रग विरगे वस्त्र आभूषण पहनते है। परतु उनमे स्थानीय छाप अवश्य रहती है। इसी प्रकार आभूषणो का आविष्कार भी निश्चय ही मनुष्य की अपने को सजाने की सहज प्रवत्ति के ही कारण हुआ होगा। साधारण जनता के प्राकृतिक वातावरण की वस्तुओ फूला, जगली पत्तो, बेला, वनस्पतिया पशु की खाला और पक्षिया के पखा को आभूषणा मे परिणत कर दिया गया। आज तक अनेक जनजातिया द्वारा खालो, परो फला इत्यादि का उपयोग सजावट क काम के लिए किया जाता है। यह जातीय सजावट लोक-नत्यो क अवसर पर प्राय देखने को मिलती है।

इन नतको की वेश भूषा को पाच भागा म बाटा जा सकता है। पहला, सिर जिसम टोपी, पगडी, चादर और घाटू (चोपू) आते हैं। दूसरा छाती का जिसम स्त्रिया की अगिया, सदरी, पुरषो का जकट इत्यादि, तीसरे, छाती स कमर तक के इसमे कोट, अचकन पटू शाल कुरता रेजटा इत्यादि गिन जा सकते हैं। चौथे कमर से घुटने तक जिसम पाजामा सलवार, धोती और पाचवें, पाव के जूत लटे पूले जुराव इत्यादि का वणन किया जा सकता है।

प्राय ऋतु अनुसार नतक सूती या ऊनी नए चमकीले और भडकील वस्त्र पहनते हैं। ऊनी वस्त्र 5000 फुट से ऊची जगह पर ही पहने जात हैं। कागडा मडी सुकेत बिलासपुर इत्यादि म नतक प्राय खद्दर या रेशमी कुर्ता व तग पाजामा सिर पर टोपी साधारण-सा कपडा, कधे पर छोटा लाल रग का कपडा, कभी-कभी लट्ठा या पापलीन की कमीज और बोस्की का पाजामा तथा सतरी रग की पगडी पहनते हैं। गल म सोने का जेवर मिगो डालत हैं और कानो म नतिया। महिलाए चूडीदार पाजामा या काली सलवार, चादी का लम्बा हार

(जस गहने) ऊचा चाक हाथो म गजरू कानो म वालिया (सोने या चादी की) काटे नाक व नथ, लाग तीली माथे पर सिंगार पट्टी हाथो म चूडिया, हार मुरकू पहनत हैं। पाव म झाझर या पाजेब डाली जाती हैं।

सोलन शिमला और सिरमौर म पुरुष गम कोट (चोलटी) अगरखा, झुगा जुड्या, गाची (कमरबन्द) टोपी चूडीदार पाजामा (सुथन) पहनत हैं और स्त्रिया टालकू या धाटू चमकीला कुर्ता चूडीदार पाजामा, गम या सूती कोट रजटा और अय अलकार पहनती हैं। जवरो म प्राय पाजेब (तोड), हाथो म कड घुघरवाली चूडिया छन बाज अगूठी (मुदरी), गजर काच की रगीन चूडिया गले म पाच लडियो का हार चादी और मूग के दान स बनी कठी चाक माथे पर बिन्दी और चार लडी की शृ गार पट्टी कानो म वालिया काट और नाक म सोने का चौडा लाग (वेसर) सोने की मुर्की और नथ पहनती है।

शिमला क कुछ क्षेत्र म नतक दल चोगा सफेद अचकन चूडीदार पाजामा, सफेद पगडी कलगी मुकुट (जिसे सामन स बाधत है) स सजधज कर नाचते हैं। कई बार अचकन या जकट, चूडीदार पाजामा और कुशहरी टोपी पहनत हैं।

कुल्लू के नतक दल और कहा-कहो मण्डी के ग्रामीण क्षेत्र के नतकदल प्राय अपने हाथ स बुन गोलाकार की कलगीदार कानी टोपी और उसक किनारो पर फूलो या चादी की सुनहरी झालर और मोणाल पक्षी की कलगी की शोभा देखने ही बनती है। सफेद लम्बा उनी कोट और चूडीदार पाजामा, लाल, पीला, भूरा ऊनी कटिकमरबन्द, तुणका दुपट्टे के साथ पहनत हैं। इस पटकू द्वारा कमर से इस तरह बाधा जाता है कि चारो ओर तहो स चित्र सा बन जाता है। उसके ऊपर एक चादर लटकाकर (बायें कधे पर) दायी कमर पर बाधी जाती है। पुराने समय म यही सनिक वेश भूषा होती थी। औरतें शरीर पर लम्बा फरोड, सिर पर प्राय धाटू (थीपू) पहनता हैं।

किन्नौर और लाहौल स्पिति की स्त्रिया अपनी परम्परागत फूलो स सुसज्जित टोपिया पहनती हैं। फूलो की मालाए तो प्राय सभी क्षत्र क नतक दल गले और सिर म पहनना पस द करत है।

कुल्लू और किन्नौर जिला की स्त्रिया अपनी टोपियो के दोनों ओर पीपल पत्र नाम का एक गहना पहनती हैं, जो पीपल पत्र के आकार की चादी का बना होता है और चादी क ही एक मीनाकारी लिए हुए खडो पर कसा रहता है। इस गहन स स्त्रिया क चहर पर एक आभा-सी झिलमिलाती रहती है। इनके हार धातुओ की बडी-बडी पतरो म से काटकर बनाय जात हैं जिन पर इस क्षेत्र की लोक परम्परागत डिजाइनो की खुदाई और हरी तथा पीली मीनाकारी रहती है। मीनाकारी की हुई इन पतरो को चन्द्रहार की चान्दी की जजीरो से जोड दिया जाता है।

कुल्लू के नाच वाले गहनों में बड़ी नथ और एक पत्ते की बलाक वाली डिजाइन शायद ही कहीं और देखने को मिले, नाक पर सोने की बारीक लोंग और अधगोलाकार नलकी पर दानेदार जटिल आकृतियां अत्यन्त सुन्दर फबती हैं।

लाहौल स्पिति में नर्तक गाउन की तरह लम्बा ऊनी चोलू और पाजामा, सिर पर विशेष प्रकार की ऊंची रंगीन टोपी, गले में मणी का हार, कानों में सोने के कुंडल माथे पर गुंदी हुई सोने या चांदी की मढ़ी हुई दो मणियां तंग पाजामा और बर्फ से सुरक्षा करने वाले बूट पहनते हैं। चोगा की तरह के कुरतों के साथ स्त्रियां कमरबन्द बांधती हैं और साथ जैकेट प्राय मरुन या भूरे रंग के कपड़े अधिक पसन्द किये जाते हैं। बाल अनेक छोटी छोटी चोटियों में गूंथे जाते हैं। पुरुष अपने कोट के दाई ओर बटन लगाते हैं और स्त्रियां उसकी जगह डोरी बांधती हैं। स्त्रियों के पाजामे चूड़ीदार पाजामे की तरह होते हैं। औरतें प्राय नीले और पीले जैकेट पहनती हैं और गर्मियों में शनील के कोट पहनती हैं। बौद्ध औरतें नंगे सिर रहती हैं। स्वांगला, शिपी और लोहार स्त्रियां गोल टोपियां पहनती हैं। अविवाहित लड़कियां सिर पर कुछ नहीं पहनतीं।

स्पिति क्षेत्र में पुरुष बालदार ऊंची टोपी लिंगजिमा एक लम्बी ढीली, फ्राक या ऊन का कोट (रिगोय) या भेड़-बकरी की खाल (यक्या) या सूती कपड़े के साथ बालदार (चारलाक) डोरी या किरा, ऊनी पाजामा (सुथन), लम्बे चमड़े के बूट पहनते हैं। पाजामा बूट के सिरे से इस तरह पहने जाते हैं जिससे ठण्ड नहीं पहुंचती। कुछ लोग रेशमी या सूती तोच पहनते है।

स्त्रियां बगैर बिना बटन के पूरे स्लीव की कमीज (हजूक) एक सूती ढीली फ्राक (तोचे) ऊन के फ्राक की तरह का कोट (रिधोच) जिसके किनारे पर धारीधार रंग (यचक) सिला होता है और चमकदार धारीधार रेशमी सश (किरा) का कमरबन्द ढीवकला पाजामा, ऊनी शाल (लिगचे) बालदार ऊनी लोकपा पहनती हैं।

वृद्ध पुरुष सोने की अंगूठियां, बालियां, (मुर्की) और इत्यादि पहनते हैं। नई पीढ़ी के लोग ऐसा नहीं करते। स्त्रियां प्राय चांदी के अलंकार अधिक पहनती हैं। लाहौली स्त्रियां माला के रंग बिरंगे मणकों से शरीर को सजाती है। इसी प्रकार अन्य जेवर जो वह पहनती हैं वे हैं—डुगश्री क्यीरकिरस, किरकित्सी ताटका पोशेल, फस, अलोग युताद छोटा-बड़ा फुली, डुकेत्सा, झुलनू मुतिग कांति शमशा, भग गुईथा, बूरकी शुव इत्यादि। स्पिति के लोग सोने चांदी के जेवर पसन्द नहीं करते, वे हीरे मोती मणके इत्यादि अधिक पहनते हैं।

हिमाचल के गद्दी नर्तक डोरा और सफेद ऊनी चोला फरगल जो चोगे जैसा होता है पहनते हैं। फरगल के नीचे के भाग में असंख्य सलवटें पड़ी रहती हैं और घेरा भी काफी बड़ा होता है। इस फरगल पर काली ऊनी, पशमीने या

रेशमी लम्बी रस्सी स कसकर कमर लपट लते हैं। गल म रगीन दुपट्टा या रूमाल लपेट लत हैं। सिर पर ऊची पगडी या टोपी पहनत हैं जिसम पक्षिया क रगीन एव चमकील पख सुसज्जित होत हैं। चूड़ीदार पाजामा पहनकर गद्दी नतक स्वर, लय और ताल पर मनोहर लोकनत्य करत हैं। स्त्री नतक शलवार रग बिरगा बगाली कुर्ता सिर पर दुपट्टा और परा म पाणी पहनती हैं। कई बार तो गद्दी औरतें पुरुषा का ही पहनावा पहन लती हैं।

पुरुष काना म सोने की नानती बाला कमीज पर चादी के बटन और सोन चादी की अगूठिया पहनत हैं स्त्रिया सिर पर चादी का चौक माथ पर क्लीयान जो जजीर-सा होता है, कानो म कर, बालबलिया कणफूल पहनती हैं। नाक म सोन क बालू लोग, फूली कोका नथनि स सजाती है। गल म चादी की डडी माला डाडमाला लच्छा कर पहनती हैं और कलाई म चादी का टोका कागनू, बगिया पाजेब झाझर घुघरी फूनू स पाव सजाती हैं।

पांगी क नतक प्राय हाथ स बुन मोटे ऊन क कोट और गोल टोपी जोजी पाजामा और परो म पूल पहनत हैं।

स्त्रिया कुर्ता तग गहरे रग का पाजामा कुर्ता पर ऊनी शाल पहनती हैं। जवरा म कर मुर्की पसन्द करती हैं।

हिमाचल प्रदेश क हर भाग म तरह-तरह की वशभूषा का प्रचलन है। प्रत्यक क्षेत्र की एक विशिष्ट शली है। इसी तरह अलग अलग क्षत्रा म गहना की अलग अलग डिजाइन और उन्ह बनान की विभिन्न प्रणालिया प्रचलित हैं। उनके लिए जिस धातु का उपयाग हाता है वह उन्हें पहनन वाल की सामाजिक तथा आर्थिक हैसियत पर निभर करता है। उसके हिसाब स भी इन प्रणालियो का विकास हुआ है।

लोक नत्या क प्रदशन क लिए जितने आवश्यक लोकगीत और लोकवाद्य हैं उतनी ही आवश्यक लोकनतक की वेश भूषा भी है। लोक-नत्यो का रूप और रग अपन स्थानीय वेश भूषा स ही मनोहर बन पाता है। इसलिए लोक नत्य परम्परा म वश भूषा की अपनी महत्वपूण भूमिका होती है।

छम्म नतक

उत्सव के अवसर पर
करनाल (थुडजेत
बजाते हुए) वादक

याक नृत्य

लामा नृत्य

चुराही नृत्य

बकाऽड नृत्य

भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री हिमाचल प्रदेश के चम्बा लोकनर्तक दल के साथ

ठोडा नृत्य

दिवाली नत्य

घुघती नृत्य

कुल्लू का नाटी नृत्य

शिमला सिरमौर का मुजरा नृत्य

नृत्य करते हुए हिमाचल के तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ० परमार और हिमाचल के तत्कालीन लोकनिर्माण मन्त्री डॉ० रामलाल

लोक-सगीत-वाद्य

वाद्यो के उन्मत्त घोष से, गायन स्वर से कंपित
जनइच्छा का गाढ़ चित्र कर हृदय-पटल पर अंकित,
खोल गए ससार नया तुम मेरे मन मे क्षण भर
जनसस्कृति तिग्म स्फीत सौन्दय स्वप्न दिखलाकर।
—सुमित्रानदन पत

भारतवष म सगीत और नृत्य धार्मिक श्रद्धा एव भक्ति भावना की अभिव्यक्ति के प्रमुख रूप रहे हैं। सगीत एव नत्यो का आरम्भ और सम्बध भी देवी-देवताओ, गन्धव एव किन्नरो मे जोडा जाता है। अपने लम्बे इतिहास म भारत म आवश्यकतानुमार विभिन्न प्रकार के अनेक लोक-वाद्यो का विकास हुआ है और समय और स्थान अनुसार उनम परिवतन, सशोधन एव परिष्करण भी होता रहा है। यही विकास क्रम हिमाचल प्रदेश म भी रहा। स्वर लय, ताल मानव को स्वाभाविक रूप स आ जाते हैं। क्योंकि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु इस ओर अग्रसर होती है। यह मानव की बहुत पुरानी प्रेरणा है। वह खुशी से झूम जाता था या ईश्वर को (जिससे वह डरता) रिझाने के लिए आदि मानव का आनुष्ठानिक नत्य उसक आवेगो को विशेष अभिव्यक्ति देता रहा है।

गीत वाद्य च नत्य त्रय सगीतमुच्यते।

इसी लय की मूल प्रेरणा न उस भावनात्मक अभिव्यक्ति के अनक रूपो को मानवीकृत करने को बाध्य किया और उसके लयात्मक वाद्यो की रचना और रूप रेखा का निर्माण किया। आदिम मानव के नत्यो की सगत मे साधन स्वय नतको न उपलब्ध किये। ये सदा ताल के लिए कदम, ताल या हाथो की तालियो स काम लते रहे। कई बार यही काय अपनी छातिया पीटकर, पीठ या पट बजाकर होता रहा। लय और ताल क प्रति प्रेम और इन कार्यों स शायद उस ढोल जस अनेक वाद्य निर्माण की प्रेरणा मिली। स्वाभाविक रूप स कल्पना भरी और सौन्दय के प्रति आकपण के भाव के वशीभूत लोक वाद्यो म विभिन्नता भी आती रही। और

इसी पर निर्भर न रहकर मानव ने धीरे धीरे खड़खड़ाहट का उपयोग प्रारम्भ किया। इसी का उभरा रूप चिमटे घुंघरू, दमामे झांझ और खड़तालें हैं।

इसी प्रकार एक और लयात्मक वाद्य जो आदिम मानव ने उपयोग में लाना शुरू किया, वह था कदम, खाल के लिए गड्ढा। ये लोग इस गड्ढे के ढक्कन पर कदमताल करते और उससे एक ध्वनि उत्पन्न करते जो आज के नगाड़े से मिलती-जुलती थी, समय पाकर कदम की जगह लम्बे डण्डों ने ले ली और उनके बड़े गड्ढे के स्थान पर धातु के अर्ध गोल कलाकार ढांचे पर खाल का ढक्कन बांध कर लगाकर बजाने लगे। इन नगाड़ों को वे भूमि दुंदभि कहकर पुकारते थे। इसका जिक्र भारत के अनेक प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है। किसी खोखली वस्तु को बनाकर अकस्मात उससे आवाज निकलते सुनकर उनके मन में कल्पना जागृत हुई होगी कि किसी खोखली लकड़ी पर खाल लगाकर ढोल की तरह आवाज निकाली जा सकती है। डफ, खजरी डमरू तम्बूरा घड़ा ढोलक इत्यादि का विकास इसी कल्पना का परिष्कृत रूप हो सकता है। इन सब लोक-वाद्यों के छोटे बड़े लम्बे चौड़े गोल चौकोर आकार आवश्यकता एवं सुविधानुसार बनते, बिगड़ते परिष्कृत होते रहे। मानव सभ्यता विकसित होती रही पर मानव को इन्हीं वाद्यों में बांसुरी इत्यादि भी विशेष उत्सवों की घोषणा एवं अन्य कार्य के लिए वाद्य जाने देखते-सुनते हैं यह सब मानव-बुद्धि विकास के साथ साथ विकसित होते रहे। इन वाद्यों को लोकगीतों की धुनों एवं नृत्यों में स्फूर्ति लाने के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा। वास्तव में वाद्यकला किसी अन्य कला पर आश्रित रही है।

भारत के अन्य भागों के लोक-वाद्यों की तरह हिमाचल प्रदेश में प्रचलित संगीत वाद्यों का वर्गीकरण विद्वानों ने चार शीर्षकों के अंतर्गत ही किया है। तत् वाद्य सुषिर वाद्य अवनद्ध वाद्य घन वाद्य। हिमाचल प्रदेश के सभी वाद्य इस वर्गीकरण के अंतर्गत आते हैं। यहां पर केवल उन्हीं लोक-वाद्यों का परिचय दिया जा रहा है जिनका हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों के साथ सीधा सम्बन्ध है। फिर भी यह सूची अपने आपमें पूर्ण नहीं है। लोक-वाद्यों से अभिप्राय ऐसे वाद्य-यन्त्रों से है जो दीर्घ परम्परा के रूप उपयोग में लाये जाते रहे हैं और जिनका निर्माण भी स्थानीय वस्तुओं से स्थानीय कलाकारों द्वारा होता रहा है।

हिमाचल में कम से कम दस साजों का एक लोक वाद्यवृन्द सम्पूर्ण माना जाता है।

इनमें से कुछ लोक-वाद्यों का जिक्र लोकगीतों की कुछ पंक्तियों में भी यत्र-तत्र मिलता है जैसे—

रामो री आरती हुइ रे
जोड़ीये नौबजो बाजीर

ढप लागा मुरली रा बाजा रे
खारि कौरा दारुए मुहाला र
लाइयों सुनुएकिन्द्री, ए णो मोरी ले हे गुणों।
कुणियो रामो रे भीतरी मेरी किन्द्री शणो॥
(पहाड़ी लोकरामायण)

वर्गीकरण अनुसार हिमाचल प्रदेश के लोकवाद्य विशेषकर जो अब तक प्रचलित और लोकप्रिय हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं
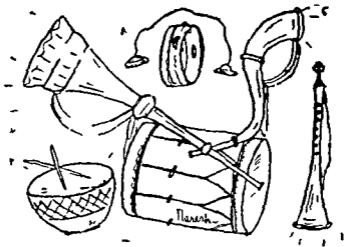
हिमाचली लोकवाद्य

(1)	(2)	(3)	(4)
(क) घन वाद्य	(ख) अवनद्ध वाद्य	(ग) सुशिर वाद्य	(घ) तत वाद्य
थाली (तसली)	डमरू (डोरू) ढाकडी	नरसिंहा, शंख	किन्नरी
घुंघरू	खंजरी, डफ ढकुली	करनाल	(किंगरी किनरी)
खड़ताल	नगाड़ा या नगारा दराग	बांसुरी, वंशी	ग्रामयन्त्र
चिमटा	ढोलक ढोलकी	शहनाई सन	सारंगी
घंटी, घंटा	डफरा, डाकरू	विशनी	रवाना
ताल (ताली)	दमामटू दमामा	काहली (काबली)	रबाब
झांझ	घड़ा	कावरी	एकतारा
मंजीरा	धौंसा	लगोजू	चिकारा

थपक लगाकर लोक सगीत की लय अनुसार ध्वनि निकाली जा सकती है।

डफ—डफ भी खजरी से मिलता जुलता कुछ बडे आकार का ढोल परिवार का लोक-वाद्य है। यह भी खजरी की तरह गोलाकार के लकडी के चौखट पर किसी जानवर की खाल कसकर जोडकर बनता है। दूसरी तरफ खाली रहता है। यह हाथ या लकडी के डडे दोनो से बजाया जा सकता है। उसका घेरा 3 फुट तक और चौडाई 4 इच स 6 इच तक होती है।

नगाडा—नगाडा को कई जगह नगारा या नकारा भी कहते हैं। यह भी पुराने लोक वाद्यो म स एक वाद्य है। इसके प्राचीन रूप भेरी और दुदुभी थे। यह विभिन्न आकार का होता है। बडे नगाडे प्रदेश के मदिरो म एक ही स्थान पर रहते है। अद्धगोलाकार के यह नगाडे तावे पीतल या लोहे के बने होते हैं। धातु के बने अद्धगोलाकार पर चम, मजबूत रस्सियो या चमडे की डोरी स कसा जाता है। लकडी के बने छोटे डण्डा स इसे बजाया जाता है जिसम गहरी और शानदार ध्वनि निकलती है। नगाडा के जोडो म एक छोटा होता है और दोनो म विभिन्न प्रकार की ध्वनि प्रसारित होती है। देवयात्रा के समय दोनो एक व्यक्ति पीठ पर उठाकर वादक इन्हें परम्परागत ढग की ताल और लय पर बजाता है। हिमाचल प्रदेश म प्रत्येक गाव क मदिर मे ढोल, नगाडे और शहनाई अवश्य होते हैं। कही तो यह सुबह शाम पूजा के अवसर पर बजाये जाते हैं पर विशेष उत्सवो और त्योहारो म इन्ह लोक-नृत्य के लिए भी प्रयोग म लाया जाता है। नगाडे की जोडी के साथ जब ढोलकी ढोल और शहनाई बजाते हैं तो वातावरण म एक दिव्य आनन्द की लहर सी फैल जाती है।

ढोल—नगाडो के साथ ढोल का होना भी जरूरी है। ढोल का लोक सगीत और नृत्यो स गहरा सम्बन्ध है। ढोल पर जब लयात्मक थाप पडती है तो नर्तक दल का दिल झूम उठता है। ढोल विभिन्न प्रकार और आकार के होते हैं। गोलाकार की मोटी और लम्बी विशेष प्रकार की लकडी पीतल या अन्य धातु के खोल बनाकर दोनो ओर चमपत्र रस्सी या चमडे की पट्टी से कसकर बाधे जाते हैं जिससे इसे दोनो सिरो स कसकर इच्छित ताल या लय निकाला जा सकता है दायें हाथ म छोटा पतला डण्डा लेकर बजाते हैं और बायें हाथ की थपकी स।

ढोलक—स्थानीय लोग बडे आकार के वाद्य को ढोल और उसस छोटे को ढोलक या ढोलकी बोलते हैं। बनावट म कोई अन्तर नही होता। ढोलक कभी लोक सगीत और कीर्तन म हाथ की थपकी स भी बजाया जाता है। स्वर और लय की दृष्टि स भी ढोलक को ढोल स भी श्रेष्ठ समझा जाता है। जहा ढोल घर स बाहर ही बजाया जाता है। वहा ढोलक छोटे-बडे घरो म भी बजायी जा सकती है।

सुषिर वाद्य—भारत में हवा से बजने वाले लोक वाद्य अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक प्रारम्भिक या सादा रूप में मिलते हैं। इनके प्रारम्भिक रूप में महत्त्वपूर्ण विकास नहीं हो पाया। इनमें से अधिक का महत्त्व देव मन्दिरों या राजा महाराजाओं के दरबारों में होता था।

शंख—यह हिमाचल प्रदेश में प्रत्येक मन्दिरों और घरों में पूजा के स्थान पर प्रायः रखा जाता है। प्रत्येक देव पूजा शंख की तीव्र ध्वनि से उद्घोषित होती है। यहां तक कि धार्मिक लोक-नृत्यों में भी इसका एक स्वर अवश्य मिलता है।

नरसिंघा—इसी तरह पूजा में उपयोग किया जाने वाला वाद्य है नरसिंघा। यह तांबे की बनी हुई दो भागों वाली नली से बना होता है। जिसमें एक ओर से बारीक सुराख करके दूसरी ओर अधिक चौड़ा हो जाता है। इन दोनों भागों को अंग्रेजी के सी या एस रूप में जोड़कर पतली दिशा को मुंह में रखकर जोर से सांस फूंककर बजाया जाता है। लोक-नृत्य में अन्तराल के बाद से बजाया जाता है।

करनाल—एक और वाद्य करनाल लम्बे पीतल या चांदी के भोंपू हिमाचल प्रदेश में बहुत प्रचलित लोक वाद्यों में गिना जा सकता है। कीप या छुछि के आकार का बना हुआ यह लोक-वाद्य दो भागों में होता है। एक ओर से एक सिरे से तंग और दूसरे सिरे तक यह चौड़ा होता है। दोनों भागों को जोड़कर बारीक दिशा में मुखिका से फूंक भरकर बजाया जाता है। इसका ताल और लय से कोई सम्बन्ध नहीं होता और सिर्फ दूर दूर तक किसी उत्सव या त्यौहार की घोषणा का संदेश देता है। लोक-नृत्य में इसे भी अन्तराल के बाद बजाया जाता है। यह रूप वाद्य है।

बांसुरी—यह भी एक बहुत पुराना लोक-वाद्य है। श्रीकृष्ण के साथ इसका बहुत पुराना सम्बन्ध रहा। प्रायः यह बांस के सूराख में बनती है। इसमें 6 से लेकर 8 तक सीधी पंक्ति में सूराख होते हैं। एक ओर से सूराख बन्द होता है। बांसुरी विभिन्न प्रकार में होती है। बांसुरी सीधी एक ओर झुककर दोनों हाथ में होठों के नीचे पकड़ी जाती है। नियन्त्रित श्वास क्रिया एवं उंगलियों के संचालन से मधुर लोक संगीत की धुन जब वायु में गूंजती है तो लोक धुन की रंगीनी सभी श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देती है। लोक नृत्य में इसका अधिक उपयोग होता है।

शहनाई—बांसुरी से भी बढ़कर शहनाई या सनाई का सुषिर लोक-वाद्यों में विशेष स्थान है। यह मंगल वाद्य प्रत्येक उत्सव, त्यौहार, देवयात्रा में आवश्यक समझा जाता है। शहनाई भी एक नाली की तरह बना वाद्य है जो दूसरे सिरे तक थोड़ा थोड़ा चौड़ा हो जाता है। इसमें प्रायः 8 या 9 छेद होते हैं जिसमें ऊपर के सात छेद बजाने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। शेष बजाने वाले की इच्छा पर

स्वराघात के लिए खुले या बन्द रह सकते हैं। शहनाई की बनावट कई प्रकार की होती है। शहनाई गहरे काले रंग की साफ की हुई लकड़ी की बनी होती है और कुछ चौड़े सिरे पर धातु की गोलाकार की घण्टी होती है। इसकी लम्बाई एक फुट से दो फुट तक होती है। शहनाई में उपयोग में लाई जाने वाली कम्पिका पाला घास की बनी होती है और उसे तंग बजाने वाले सिरे पर जोड़ा जाता है। एक अन्य कम्पिका और हाथी दांत की सुई को जिनके साथ कम्पिका का सामंजस्य जोड़ा जाता है, कम्पिका के साथ संलग्न किया जाता है।

शहनाई के सात सुराखों में तो ऐसे लगता है जैसे इसके द्वारा बहुत कम ही अभिव्यक्ति मिल पायेगी। वास्तव में कम्पिका की मुखिका पर जिस तरह होंठ और जिह्वा बजाते हैं और जैसे यह सुराख खोले या बन्द किये जाते हैं उसके कारण शहनाई संगीत की आंतरिक भावनाओं को बड़े प्रभावशाली एवं आकर्षक रूप में प्रकट कर पाती है। सरल से लेकर जटिल लोक संगीत की धुनें कुशल शहनाई-वादक इस पर बड़ी खूबी से निकालता है। हिमाचल प्रदेश में शहनाई का आकार अन्य स्थानों की अपेक्षा छोटा होता है।

शहनाई वादन अत्यन्त जटिल विधि है। इसलिए शहनाई-वादक को वादन सीखने के लिए परिश्रम, साधना एवं समय लगाना पड़ता है। हिमाचल प्रदेश में इसके परम्परागत वादक प्रायः अनुसूचित जाति के लोग (तुरी, हेमी या ढाकी) ही रहे हैं जिनका वर्ष भर का गुजारा इसी व्यवसाय से चलता था परन्तु तीव्र गति से आने वाले सामाजिक परिवर्तन के कारण ऐसे दक्ष वादक धीरे धीरे कम होते जा रहे हैं, मिटते जा रहे हैं। हेसी नाटी का प्राण होता है। कहावत प्रसिद्ध है—

बाजे ले ढोलिया ढीली नाटी
नाचा नी बणदी हेसी घाटी

हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों में विशनी, पोगा, काहली, नाद, भरी इत्यादि बजाने की परम्परा भी है परन्तु इन वाद्यों का लोक-नृत्यों से अधिक सम्बन्ध नहीं है।

तत वाद्य—तत वाद्यों में किंदरी (किंगरी या किन्नरी) और सारंगी है। परन्तु जोगी, साधू, लामा इत्यादि ही धार्मिक भजन और कीर्तन या भक्तिपूर्ण नृत्यों में इनका उपयोग करते हैं। हिमाचल प्रदेश में अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय लोक-नृत्यों में अब इनका अधिक स्थान नहीं रहा।

समय के अनुसार पुराने लोक वाद्यों में परिवर्तन भी हो रहा है। रेडियो और अन्य साधनों ने लोक-परम्पराओं और लोक-नृत्यों में उथल पुथल पैदा कर दी है। इसलिए समय की मांग है कि हिमाचल की इस समृद्ध लोक-परम्परा

को सुरक्षित रखन के लिए प्रभावशाली कदम उठाए जाए। सभी लोक वाद्यो का कला अकादमी द्वारा सग्रह एव वर्गीकरण किया जाये। लोक-वादको को प्रोत्साहन देने के लिए वप म जिला एव राज्य स्तर पर लोक-नत्यो के अतिरिक्त अलग मे प्रतियोगिता रखी जाय और जिला और राज्य स्तर पर उनको पुरस्कृत किया जाय। जिन लोक-वादको की आर्थिक स्थिति अच्छी नही उनको सहायता अनुदान देने की योजना अय कलाकारो के साथ बनाई जाए ताकि यहा की लोक परम्परा की एक सुन्दर और अमूल्य निधि को लोक मनोरजन के लिए सुरक्षित रखा जा सके।

4543

लोकवादक बाजगी बजतरी

लोक-वाद्यो के साथ साथ हिमाचल प्रदश की लोक वादक परम्परा पर प्रकाश डालना म उचित समझता हू।

आज तक लोक-वाद्यो, लोक धुनो, लोक गीतो की परम्परा को जीवित रखने का श्रेय इन आर्थिक रूप म निधन और सामाजिक रूप म पिछडे अपने काम म दक्ष, अनुसूचित जाति क बाजगी लोगो को जाता है। कुछ शतक पहल इनम से बहु-सख्यक के पास न कोई अपनी भूमि थी और न घर। आज इनकी आर्थिक स्थिति पहले स कही अच्छी है और धीर धीर पढे लिखे लोग अपने पारम्परिक व्यवसाय को छोडत जा रहे है।

भारत स्वतत्र होन से पहले यह लोग हिमाचल प्रदेश के प्रत्यक ग्राम देवी देवता, राजा राणा मे सम्बधित रहते थ। इनके खाने पीने का प्रबध भी शासक या ग्रामवासियो द्वारा किया जाता था। कोई उत्सव त्योहार बिशू जात्रा, देव यात्रा इत्यादि क दिन आते ही यह लोग अपने व्यवसाय म जुट जाते थ। पुरुष लोग लोक वाद्य बजान म दक्षता प्राप्त करत थे और इनकी स्त्रिया नाचने और नए गीत गाने म। इस तरह हिमाचल क लोक जीवन के लोक मनोरजन का मुख्य भार इनके कधो पर था। खुशी के मौके पर ही नही मत्यु के समय भी यह लोग अपन ढोल नगाडे, शहनाई इत्यादि लकर पहुच जाते और शोक के अवसर पर लोक धुनें बजाते थ। प्रत्येक अवसर पर इनको निश्चित रूप म अनाज और पसे भी मिलते थे।

किसी भी प्रकार का लोक नत्य हो धुरिण, ढाकिन स्त्रिया लोक-वाद्यो की धुन पर नाचती हुई और गीत गाती हुई लोक-नत्यो मे नया रग और रस भर देती। यह धूरि के साथ मधुर कठ से लोकगीत गाती हुई लोक धुन पर नाचती हुई दशको का मन मोह लती। दशक म से कई रुपय पसे भी डालते रहते और यह उनकी जय जयकार करते उन्हे सभालत हैं। ठड मे बाजगियो के पास आग का अलाव और हुक्का भी रहता है।

प्रत्येक सक्रांति उत्सव त्योहार विवाह देवयत्र और विशेष पूजा के अवसर पर उनका हाजिर होना आवश्यक समझा जाता था। हाजिर न होने पर देवी देवता की तरफ से कारदारो की जुमली (सभा) होती और उन पर विशेष दण्ड लगाया जाता। इसलिए प्राय वह हर अवसर पर यथासमय पहुच जाते। केवल दण्ड का भय ही नही देवी देवता के प्रकोप से भी यह लोग बहुत डरते थे। जब कभी एक से अधिक देवी-देवता का मिलन होता और बहुत सारे दक्ष वादक इकट्ठे होते तो खूब मुकाबला होता। बारी-बारी अपनी कला का प्रदर्शन होता। यही अवसर होता जब नई वाद्य कला नए गीत नए साज नई लोकधुनो का आदान प्रदान होता और नई पीढ़ी के लोक वादक अपने बूढ़ो से नई लोक धुनें सुनते सीखते।

इन लोक वादको में हसी (शहनाई बजाने वाला) और ढोलकी बजाने वाले की बड़ी माग रहती है। नतक इन लोक कलाकारो पर गव करते हैं। ये लोग पहले जन्म से होते थे अब कम से होते हैं। हेसी या सनाईया गीत बजाता है ढोलकिया ताल पकड़कर पखावज की भांति दायी-बायी ओर को बजाकर नेतत्व करता है। ढोलकी डौंगी से बनाई जाती है।

पहले इनमे शिक्षा और नतिकता का भी अभाव था। उसका कारण उच्च वग के लोगो द्वारा इनका हर रूप में शोषण था। परन्तु ऐसी बातें धीरे धीरे मिटती जा रही हैं और उनकी जीवन पद्धति में परिवतन आ रहा है। आर्थिक और सामाजिक स्तर सुधर रहा है। अब तो लोक कला को जीवित रखने के साधन आकाशवाणी, दूरदशन चित्रपट, सचित्र पुस्तकें, शोध पत्र ललित कला अकादमी साहित्य अकादमी उत्सव समारोह और व्यक्तिगत प्रयत्न आदि रह गए हैं। भारत के प्राचीन साधन श्रुति स्मति परम्परायें, रीति रिवाज सामाजिक परिवतन के फलस्वरूप धीरे धीरे मिटते जा रहे हैं और उनका उनका स्थान अभी नए साधन पूणरूप से नही ले पाए।

हिमाचल के यह लोकवादक बहुत कम सख्या मे अब रह गए है और वतमान पीढ़ी के बाद शायद इनमे से कोई चिराग लेकर ढूढने से भी नही मिल पायेगा। इसलिए आवश्यक हो गया है कि इस कला को केवल हरिजनो में से कुछ लोगो तक ही सीमित रख देने से यह कला मिट जायेगी। क्योंकि लोक वाद्यो का हमारे लोक मनोरंजन ग्रामीण समाज मे आज भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसमे हृदय को स्पन्दन करने लोकमानस को विकसित करने और लोक मनोरंजन की शक्ति विद्यमान है। इसलिए अन्य बातो के अतिरिक्त निम्नलिखित कदम अत्यन्त आवश्यक हैं।

(क) ग्राम पचायत ब्लाक स्तर पर वार्षिक समारोह का आयोजन कर अच्छे लोक-वादको को प्रोत्साहित एव पुरस्कृत करे।

(ख) ब्लाक स्तर पर पुरस्कृत कलाकारों का जिला स्तर पर समारोह आयोजित कर उनमें से श्रेष्ठ कलाकारों को पुरस्कृत किया जाय और श्रेष्ठ रचनाओं और टेपरिकार्डों पर रेडियो इत्यादि के लिए सुरक्षित किया जाये।

(ग) इन सब श्रेष्ठ कलाकारों को हिमाचल दिवस, स्वतन्त्रता दिवस गणतन्त्र दिवस, राजकीय युवक समारोहों और राजकीय उत्सवों पर बुलाकर सम्मानित किया जाय। इनमें ललित कला एकादमी, लोक सम्पर्क विभाग, आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा भी प्रोत्साहित एवं संरक्षण प्रदान किया जा सकता है।

(घ) एक योजना के अन्तर्गत प्रदेश के इन श्रेष्ठ कलाकारों को आर्थिक सहायता की एक स्थाई योजना भी बनाई जा सकती है, जिसके अन्तर्गत कलाकार कला को जीवित भी रख सकें और स्वयं भी सम्मानपूर्वक निर्वाह कर सकें ऐसा गुरु शिष्य परम्परा द्वारा प्रसिद्ध गायकों एवं बजंतरियों के साथ किया जाता है।

हिमाचल के लोकवादन

(ङ) सभी परम्परा लोक-वाद्यों का संग्रह राज्य संग्रहालय में शीघ्र होना चाहिए। सभी लोक-वाद्यों की सूचि, चित्र ध्वनि रिकार्डिंग चित्रपट द्वारा संग्रह होना चाहिए।

लोक-नृत्य-गीत

लोक-सगीत द्वारा सामाजिक जीवन का कोष सचित हुआ है। जनसाधारण के स्वप्न और आदश, उद्देश्य और कल्पना सब—कुछ लोक-सगीत मे ही मुखरित होता है।—डा० राधाकृष्णन

इस सत्य स कोई इन्कार नहीं कर सकता कि लोक गीतो म धरती गाती है पहाड गाते हैं नदिया गाती हैं फसलें गाती हैं उत्सव और मेले ऋतुए और परम्पराए गाती हैं।

हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यो के साथ लोक गीत इन्हे चार चाद लगा देते हैं। नि सन्देह लोक-नृत्य और गीत का जन्म साथ साथ सघष और श्रम साधनो के अवसर पर दिखाई जाने वाली भावमयी मुद्राओं व उन चरम क्षणो स हुआ जब जीवन का सौन्दय जाग उठा और गीत फूट पड । चिरकाल के समान उदय और प्रयोजन व कारण, हिमाचल के लोक-नृत्य और गीत लोक जीवन के अभिन्न अग रहे हैं और पवतीय सामाजिक जीवन को सचित्र सजीव और प्ररित करत हुए लोक-नृत्य गीतो स विभूषित हैं। इनका सरल प्रवाहमान सगीत नृत्य की ताल, लय को कला प्रदान करता है और तब दशक की आत्मा मन्त्रमुग्ध सी अलौकिक आनन्द का रसास्वादन करने लगती है। हृदय आकाश म सप्तरगी इन्द्रधनुष का वितान फल जाता है नेत्र भाव विभोर हो उठत हैं मनमोर नाच उठता है और प्रकृति का रोम रोम पुलकित हो उठता है और मानव की सहज अभिव्यक्तिया मधु और अमृत के गीत गाने लगती हैं।

डा०सत्येन्द्र ने नृत्यगीत पर प्रकाश डालते हुए लिखा है —

1 2 3 4 5 6 7
नटन + नतन + भावाभिनय + वादन + स्वर + साधन + शब्दनियोजन +
1 2 3
8
अथज्ञापन + भावाभिव्यक्ति
4

इनमें से 1, 2 तथा नृत्यगीत के मूलाधार हैं। —प्रथम अवस्था

6 इसक उपरात आता है। इसम शब्द तो आत है पर अथज्ञापन का महत्त्व नही होता। —द्वितीय अवस्था

4 नटन + नतन मे पग कर सचालन से एक ताल स्वय पदा होती है। इसी मे वादन आरम्भ हो उठता है। जो नृत्य म भाग नही ल रहे होते हैं उनम भी ताल से ठेका लगान की गति स्वयमव उभर उठती है और वादन का ज म हो जाता है। —ततीय अवस्था

5 भावाभिनय इस स्थिति पर उभर उठता है। नत्य और स्वर शब्द जब ताल पर जमन लगन हैं तो दो ताला के मध्य एक तरग, लहर या गीत प्रवाह थिरकता है। इमी म एक रस और रस पोषक भाव की गमक मिल उठती है। यह अथपूण भावाभिनय होता है। —चतुथ अवस्था

6 अब श द प्रधान हो उठत हैं। स्वर-तरग शब्दो को पचा नही पाती है, उनके ऊपर होकर प्रवाहित हाती है उ ह अपने म व्याप्त नही कर लती, उनम याप्त हाती चलती है। फलत यह शब्द साथक हो उठन हैं। अथनापन भी इनमे आ जाता है। —पचम अवस्था

7 अथनापन स अर्थानुप्राणित भावाभिव्यक्ति गीत म हो उठती है। उसी के साथ अर्थानुप्राणित भावाभिनय म मुख और हस्तमुद्राए साभिप्राय और प्रतीक वत हो उठती हैं। —षष्ठ अवस्था

ताल और साज

हिमाचल प्रदश के लोक नत्य किसी सर्वाग शास्त्र की भाति अलिखित सिद्धा त मा यताओ, नियम विधि निषेध और अविधि आदि हैं। इसका सम्पूण वाद्य व द साज और ताल है। तालियो, मात्राओ युक्त य लोक-नृत्य परम्परागत अलिखित लोक नत्य शास्त्र पर अधिक आधारित हैं।

लोक नत्य प्रारम्भ करने के लिए शहनाई वादक शहनाई म गीत बजाता है ढोलकी वादक ताल पकड कर पखावज की भाति दायें-बायें और डाडी या काठी स बजाकर नतरव करता है। लोक-नृत्य वाद्यव द मे दाय और बायें के लिए अलग साज होत हैं। ढोल (ड्रम) धामा (बाया) का और नगार दाया दिशा ड्रमो का प्रतिनिधित्व करते हैं जो ढोलकी स निकले बोलो को ऊपर उठाते हैं। लोकवादक ताला की चमकत हुए बडी कलाबाजिया दुगुण तोड आदि बजात हुए पूरी मात्राआ पर सम पर लौट आत हैं। इनक भी मात्राआ और तालियो के बोल होने हैं परन्तु य मात्र प्रयोग या व्यवहार द्वारा ही प्रचलित हैं। तालो का नत्य पर कोई प्रभाव नहीं पडता। एक ताप प्रत्यक साज दसियो की सख्या मे बजने पर भी यही जानकारी द्वारा ग ड़बड नही होती।

भारतीय नृत्यों के दो मुख्य भेद प्रसिद्ध हैं। विलंबित गति वाले लास्य और तीव्र या चपल वाले ताडव। हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों में विशेषता उसकी लास्यबहुलता है। यद्यपि लोक-नृत्यों में अधिकांश नृत्य त्वरा गति वाले हैं, परन्तु इनका प्रदर्शन तभी होता है जब नृत्य समाप्त हो रहा हो क्योंकि नृत्य के समय उछल कूद आगे पीछे इधर उधर झूमने में नर्तक थक भी जाता है। इसलिए इन तालों को मार्ग पर चलते या समारोह के अंत में नाचा जाता है।

द्रुतगति या ताण्डव ढंग के नृत्यों में अन्य कार्य सम्भव नहीं हो सकता। लम्बे कार्यक्रमों में तो धीरगति नृत्य 90 प्रतिशत समय लेते हैं। छोटे कार्यक्रमों में भी इन्हें अंत तक एक चौथाई समय ही मिलता है, जिसमें लाहुली चम्बियाली चाखनी उजगजमा खडायता आदि की लास्यता से विश्रान्ति पाते हैं। परन्तु अंतत वे भी चपल हो जाते हैं। एक पग (यह पग विलम्बित नृत्यों में एक दो इंच से अधिक नहीं होता) दाहिने बढ़ा (ताली एक) दाया पीछे वाला पांव दाहिने सरकाया (ताली दो) फिर यही क्रम दुहराया (ताली चार) बाम पादके का वही ठुमका लिया (ताली पांच) बाया पांव पीछे किया (ताली छ) दायें पर का आगे ठुमका (ताली सात) दाया पांव पीछे अपने स्थान पर रखा (ताली आठ) इस प्रकार के चक्रों से आगे बढ़ते वक्त सैकड़ों सहस्रों चक्रों के अनगिनत फेरे नर्तकों की पंक्ति बजंतरियों के समताल लगाती चलती है। तबले के तालों की भांति नृत्य तालों के भी अनेक विभिन्न ताल भिन्न भिन्न संख्या की मात्राओं में होते हैं। परन्तु यदि प्रक्षेप अंग चेष्टाएं तालियों पर ही होती हैं जो भिन्न भिन्न नृत्यों की भिन्न भिन्न संख्या की मात्राओं पर होती हैं। ये ताल छ आठ दस चौदह सोलह और चौबीस मात्राओं के पाये जाते हैं। ताल कितनी मात्रा का भी हो नृत्य का चक्र (लूड़ी तरासे छोड़कर) आठ ही तालियों का चलता रहेगा ताल के सम पर लौटने का प्रभाव तोड़े के अवसर के अतिरिक्त परिलक्षित नहीं होता, इस प्रकार नृत्य का भरपूर आनन्द नाचने देखने के अलावा बजाने वाले भी लेते हैं।

नृत्यों का आयोजन जितना लम्बा हो उसी के अनुसार वे नृत्य बदले जाते हैं। उसी अनुपात से प्रत्येक नृत्य को समय देकर अगले का आरम्भ होता है।

नृत्य संचालन वैसे तो शहनाई वादक करता है, परन्तु कई बार उसे नृत्य को बदलने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जब ढोली लोग एक नृत्य को तन्मयता से बजाते हुए आसमान सिर पर उठाये रहते हैं तो उस नक्कारखाने में बेचारी तूती की कौन सुने। ऐसी दशा में कोई समय ढोली ही बदलाव दे सकता है।

जब नृत्य स्थानान्तरित करना हो तो भी विलम्बित ही नाचते हुए मेले दूसरे स्थान तक जाता है। जब शहनाईवादक नृत्य बदलने के लिए अलाप छेड़ता है तो नाचने वाले उत्सुकता से आ' का स्वर करके उसका समर्थन करते हैं और

भारतीय नृत्यों के दो मुख्य भेद प्रसिद्ध हैं। विलंबित गति वाले लास्य और तीव्र या चंचल वाले ताण्डव। हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों में विशेषता उसकी लास्यबहुलता है। यद्यपि लोक-नृत्यों में अधिकांश नृत्य त्वरा गति वाले हैं परन्तु इनका प्रदर्शन तभी होता है जब नृत्य समाप्त हो रहा हो क्योंकि नृत्य के समय उछल कूद आगे पीछे इधर उधर झूमने में नर्तक थक भी जाता है। इसलिए इन तालों को भाग पर चलते या समारोह के अन्त में नाचा जाता है।

द्रुतगति या ताण्डव ढंग के नृत्यों में अन्य कार्य संभव नहीं हो सकता। लम्बे कार्यक्रमों में तो धीरगति नृत्य 90 प्रतिशत समय लेते ही हैं। छोटे कार्यक्रमों में भी इन्हें अन्त तक एक चौथाई समय ही मिलता है, जिसमें लाहुली चम्बियाली चाखनी उजगजमा खड़ायता आदि की लास्यता से विश्रान्ति पाते हैं। परन्तु अन्ततः वे भी चंचल हो जाते हैं। एक पग (यह पग विलम्बित नृत्यों में एक दो इंच से अधिक नहीं होता) दाहिना आगे (ताली एक), दायां पीछे वाला पांव दाहिने सरकाया (ताली दो), फिर यही क्रम दुहराया (ताली चार) बाम पादक का वहीं ठुमका दिया (ताली पांच), बायां पांव पीछे किया (ताली छः) दायें पैर का आगे ठुमका (ताली सात) दायां पांव पीछे अपने स्थान पर रखा (ताली आठ) इस प्रकार के चक्रों से आगे बढ़ते बढ़ते सैकड़ों सहस्रों चक्रों के अनगिनत फेरे नर्तकों की पंक्ति बजंतरियों के समताल लगाती चलती है। तबले के तालों की भांति नृत्य तालों में भी अनेक विभिन्न ताल भिन्न भिन्न संख्या की मात्राओं में होते हैं। परन्तु यदि, प्रक्षेप, अंग चेष्टाएं तालियों पर ही होती है जो भिन्न भिन्न नृत्यों की भिन्न भिन्न संख्या की मात्राओं पर होती हैं। ये ताल छः आठ दस चौदह सोलह और चौबीस मात्राओं के पाये जाते हैं। ताल कितनी मात्रा का भी हो नृत्य का चक्र (लूडी तरासे छोड़कर) आठ ही तालियों का चलता रहेगा, ताल के सम पर लौटने का प्रभाव तोड़ के अवसर के अतिरिक्त परिलक्षित नहीं होता इस प्रकार नृत्य का भरपूर आनन्द नाचने देखने के अलावा बजाने वाले भी लेते हैं।

नृत्यों का आयोजन जितना लम्बा हो उसी के अनुसार वे नृत्य बदल जाते हैं। उसी अनुपात से प्रत्येक नृत्य को समय देकर अगले का आरम्भ होता है।

नृत्य संचालन वैसे तो शहनाई वादक करता है परन्तु कई बार उसे नृत्य को बदलने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जब ढोली लोग एक नृत्य को तन्मयता से बजाते हुए आसमान सिर पर उठाये रहते हैं तो उस नक्कारखाने में बेचारी तूती की कौन सुने। ऐसी दशा में कोई समर्थ ढोली ही बदलाव दे सकता है।

जब नृत्य स्थानान्तरित करना हो तो भी विलम्बित ही नाचते हुए मेले दूसरे स्थान तक जाता है। जब शहनाईवादक नृत्य बदलने के लिए अलाप छेड़ता है तो नाचने वाले उत्सुकता से आ का स्वर करके उसका समर्थन करते हैं और

शहनाईवादक या कोई नटया ही अपनी पसन्द का उसी या अन्य ताल का गीत छड देता है। यदि तालातर हुआ तो गति और अग चेष्टाओ म भी बदलाव आता है। इस प्रकार नत्य का सोपान धीर या विलम्बित की ओर स चढ़त चढ़त क्रमश त्वरा की ओर बढ़ता है। य सीमित या विभिन्न नृत्य हा है। चलत नत्या म खला नाचन को भी पसन्द किया जाता है जिसम दाहिने हाथ के पख या रूमाल का स्थान खडग (तलवार) ल लती है। इसम ताडवता और बढ जाती है। हा, मेल मे तलवार का मेल नही बठता। मुक्त नतक की त्वरित नत्या म तलवार घुमाकर नाचत और दो तलवारिये परस्पर खडायत बाजा बजने पर घोर युद्ध का जसा दश्य प्रस्तुत करत हैं जो दो तीन मिनट स अधिक नही चलता। वह दश्य एक स अधिक जोडिया भी कर सकती हैं। इस दौरान बाकी नतक रूमाल घुमा घुमा कर शाबस, शावस' करत है। पुन वहो या कोइ दूसरा चलत नत्य अथवा तरास आदि शुरू हो जात है। कहते है इस खन्डायत या ठाडा नामक नत्य का चलन हिमाचल के एक राजा (राजा मानसिंह) न अपन सनिका को चस्त नाच नाचने क लिए प्रचलित किया था। इस प्रकार तीव्रतर नत्यो म पक्ति म नाचने वाला की गति और अग चेष्टाए भी त्वरित हो उठती हैं, क्योकि ताल ही एमे हात हैं। गभीर नतक भी एस अवसर पर मदान छोड बठत है।

कुछ नृत्य गीत

हिमाचल क भोल भाल लोगा क। सरल और निष्कपट हृदया म लाक सगीत है और उनकी मनाहर चाल म लोकनतन। और जब शीतलता और स्वास्थ्य प्रदान करने वाली पवन दवदार और चीड के वृक्षो स हाकर बहती है ता काना को तप्त करने वाल लोक-गीत की गूज भी वायु म फल जाती है—

> पहाडा दा रहणा चगा ओ गादिया।
> पहाडा दा रहणा चगा हो।
> ठण्डी ठण्डी हवा चलदी
> बरफा दा पाणी पीणा हो
> जीणा पहाडा दा जीणा हो।

किन्नौर क नृत्य-गीता म प्रकृति प्रेम और सामाजिक चतना का आभास सहसा हो जाता है। प्रस्तुत है नत्य गीत की कुछ पक्तिया —

> नीमा जाडमो!
> लार मु गोन्या।

लारा सु गोपा चो ढाई निजा लामा।
लारा सु गान्पा चा ढाई निजा लामा॥
ढाई निजा लामा, शुभ निजा जामो।
ढाई निजा लामा, शुभ निजा लामो॥
शुभ निजा लामा, लामा चईन दुरे।
शुभ निजा लामा, लामा चईनु दुरे॥
लामा चईनु दुरे आचो आने छाड जोदो।
लामा चईनु दुरे, आचा आने छाड जोद॥
शुभ नीजा जोमो, जोमो, चईनु दुरे।
शुभ निजा जोमो, जोमो चईद दुर॥
जोमो चईनु दुरे, बानठीन निमा जाडपो।
जोमो चईनु दुरे, बानठीन निमा जाडमो॥
आचो आने छाड जोद कोनिचा हात दुज़ोश।
आचो आने छाड जोद, कोनीचा हात दुज़ोश॥
कोनीचू ता लोनमा, लार सो छताचो।
कोनाचू ता लानमो लार सो छताचो॥
लारसो छेताचो, बानठीन निमा जाडमो।
लारसो छेताचो बानठीन निमा जाडमो॥

किन्नौर के कुछ लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। बौद्धधर्म ग्रहण करने में वहां किसी तरह की पाबन्दी नहीं। इच्छानुसार कोई भी कभी भी इस धर्म को ग्रहण कर सकता है। गांव-गांव में वहां बौद्ध मठ है लामा हैं और बौद्ध भिक्षु भिक्षुणियां हैं। गीत में चर्चित लारसो नामक एक ऐसा ही बौद्ध मन्दिर है। वहां दो स्कूल हैं, एक में लड़के पढ़ते हैं और दूसरे में लड़कियां। वास्तव में यह दोनों स्कूल एक ही स्कूल के दो भाग हैं। इनमें 50 लड़के और 60 लड़कियां पढ़ती हैं। लड़कों में सबसे लायक और बुद्धिमान छन्जोत नामक लामा हैं जिनकी प्रेमिका उन्हीं 60 लड़कियों में सबसे होशियार है और सबकी अगुआ है।

पांगी पालदार नृत्यगीत का वानगन देखिए —

पाग पालदाङ कुमो।—2
ज्ञातोदङ शोम्पो छाडा॥—2
ज्ञयोदङ शोम्पो छाडा।—2
ओमबू छोल्पो छोड़पा।—2
ओमब ता छोल्पो छोड़पा॥—2

होना ता नीलामु छोडपा ।—2
डायोटड ता शोम्पो छाडा ।2
आला चो रड़बेते ।—2
आला चो रड़ बे तेयो ।—2
नामड ठद दुजोश ॥—2
नामड ता लोनमा ।—2
आली चो स्यो नामड ॥—2
आली चो स्यो नामड ॥—2
सन पुरा नेगी ॥—2
बते स्यो नामड ॥—2
सानपुरा छोडपा ॥—2
सन पुरीस लोतोश ।—2
आली चो याना आचो ॥—2
आली चो याना आचो ।—2
नीलाम पोचम बीते ।—
नीलाम पोचम बीते ॥—

किनौर के इन नत्यगीतो मे चराचर जगत गाता है नत्य करता है । इन नत्यगीतो द्वारा सामाजिक जीवन का कोष सचित हुआ है । जनसाधारण के स्वप्न और आदश, उद्देश्य और कल्पना सब-कुछ इन नत्यगीतो द्वारा मुखरित हुआ है ।

कोकिलकठी किन्नरिया के मुख से जब रस और जीवन से भरपूर नत्य गीत हवा मे गूजत है, तब कौन एसा सहृदय श्रोता है जो नत्य क लोभ को सवरण कर सके । मधुर कठो के साथ स्थानीय लोकवाद्य इन नत्यगीतो को एक नया उभार देकर चार चाद लगा दत हैं । किन्नरी लाकगीत के अथाह सागर मे से इन कुछ नत्यगीता स ही उनकी विशपता की झलक मिल जाती है ।

जमाल बजीर

खोना रामपुर बोलो
खोना रामपुर
कुमो दरबारो बोलो
कुमो दरबारो ॥
कुमो दरबारो बोलो ।
कुमो दरगारो ॥
तौगौतू देन महाराच बोलो,

तोंगोतू दन महाराच ।।
तोंगोतू देन महाराच बोलो,
तोंगोतू देन महाराच ।
गोलामु देन शुमगुर बोलो,
गोलामु देन शुमगुर ।।
गोलाम देन शुमगुर बोलो,
गोलामु देन शुमगुर ।।

लोकगीत बहुत लम्बा है। इस गीत म जमाल वजीर की कत्तव्यनिष्ठा का चित्रण है। किस तरह उस डाडरा क्वार क्षत्र म कर वसूल करने की आना राजा ने उसे दी पर उसने आन स पहल मा-बाप से मिलने की आज्ञा मागी जो नही मिली। आज्ञा पालन करत हुए वह वहा स चला गया पर फिर कभी वह घर नही लौट सका।

हिमाचल क अनपढ ग्रामवासियो की इस समद्ध लोकनिधि म जीवन क असीम दुखा को भुला दने की क्षमता है। इसमे युगो युगो की बुद्धिमत्ता और आनन्द-तत्व क दशन सवत्र होते हैं। इस नत्यगीत को देखिए—

सिद्ध राजा लोतो भई ता
जड सिडोनो हम तोन भई
इचू वातड रिड तोक भई
इचू वातड रिड तोक भई
गता कनोरिड बितोक भई
गता कनोरिड बितोक भई
बयग माचू शा जामू भई
बयग माचू शा जामू भई
बयग काछ शा जाम भई
सिंध रानोस नोतो भई
का कनोरिड याब्यू भई

सर्दियो म बाघ शिकार की तलाश म गाव तक पहुच जाता है। तग आकर लोग उस मारने की योजना बनाते हैं। बाघ जब मारा जाता है तो उसकी खाल म भूसा भरकर लोग घर घर नाचते और गाते हैं। बाघ मारने वाले को इनाम भी दिया जाता है। इसी बात की ओर सकेत इस गीत म है।

हिमाचल प्रदेश के सभी लोकगीत नत्यगीत नही। अधिकतर कथागीत और धार्मिक गीत प्राय अधिक लम्बे होने क कारण इस श्रेणी म नही आते। पर इनके गाने और इनकी लय और तान पर नाचने के विरुद्ध कोई पारस्परिक एव

सामाजिक विरोध भी नही है। प्राय लोग लम्बे गीतो को सुनने म अधिक आनद लत है। नृत्यगीतो म यही विशषत अपक्षित है कि उन्हे गाकर, सुनकर शरीर को थिरकन देने की प्रेरणा मिल सके। पुरान लोक-गीतो का अपना स्थान है, पर प्रति दिन नए नत्यगीत भी जन्म लेत है और स्मति और श्रुति क सहार, सामूहिक अवसरो पर प्रसारित होकर जनमानस पर गहरी छाप छोड जात है।

कुल्लू क ग्राम्य नृत्य-गीतो की शोभा ही निराली है। सीधा साधा पर रग रस स भरपूर रहन-सहन, वस ही सीधे-साधे विचार और वसी ही सरल और हृदय-स्पर्शी भाषा। इनम स कुछ नत्यगीतो की छटा दखिए —

लाल डूगिए

मेरी लाल डूगिए, मेरी लाल डूगिए
विजा दशमी लागी, मेरी लाल डूगिए
आसा जाचा बे जाणा, मेरी लाल डूगिए
खोला खेलदी लागी, म्हारी दई सरला
मेरे जौंधडू शौले, मेरी लाल डूगिए
आसा बाजा मगाणा, शुण देई सरला
घोंणा जाचाडू लाणा, मेरी लाल डूगिए
थिपू चितरा पौटू, म्हारी देई सरला
म्हारे देशा रा बाणा, मेरी लाल डूगिए
तेरे जुटू रा शाणा शुण देई सरला
लाऊ भरम खाणा, मेरी लाल डूगिए

इस लोक-गीत म नायका लाल डूगी की प्रशसा करत हुए कुल्लू दशहरे म नाचने-गाने और खुशिया मनाने का जिक्र है।

सिवदासिए

मेली लोड़ी पाणी रे नाला सिवदासिए,
मेली लोड़ी पाणी रे नाला तेरे सो,
देश बोला शोभना उझी मनाली रा,
पाणी बोला ओक्ती आला तेरे सो।
पाणी बोला ओक्ती आला सिवदासिए
पाणी बोला ओक्ती आला तेरे सों।
गुडी लोडो मुडी रा डाला सिवदासिए
गुडी लोड़ी मुडी रा डाला तेरे सों।

मछी लागी तडफी, तडफी जो तडफी
मछू लागा झीरे रे जाला तेरे सा।
मछू लागा झीरे रे जाला सिवदासिए
मछू लागा झीरे रे जाला तेरे सा।

इस गीत म नायिका के साथ कुल्लू मनाली के प्राकृतिक सौदय का वणन किया गया है।

लालडिए

तेरे खौला बे आई ओ जी,
खेलदी आई लालडिए मेरी लालडिए
खेली जागडू शौले लालडिए मेरी लालडिए
छौसिए दनु ओ जी छौसिए दनु
लालडिए मरी लालडिए
किजी रे तेले ओ जी किजी रे तेले
लालडिए मेरी लालडिए
मीटी रे तेले ओ जी मिटी रे तेले
लालडिए ओ मरी लालडिए
किजी रे तेले ओ जी किजी रे तेले
लालडिए मेरी लालडिए
गटटी रे तले ओ जी गुटटी रे तेले
लालडिए मेरी लालडिए

इस गीत की नायिका के नाचते-खेलते पाव ठण्डे हो गए तो नायक उसे गर्मी पहुचाने के अनेक साधनो का जिक्र करता है।

चम्बा ने लोकगीतो के क्षेत्र म राष्ट्रीय स्तर पर जो ख्याति अर्जित की शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो। चम्बा के सुन्दरतम लोकगीत सुनने म भी उतना ही स्वर्गिक आनन्द देते हैं जितना नृत्य के साथ-साथ। यह नृत्य-गीत हिमाचल प्रदेश तक ही सीमित नही अपने गुणो मे इन्होने देश के जनमानस पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है और कइ लोक-गीतो की धुनें फिल्मी गीतो के लिए भी अपनाई गइ। ऐसे ही सुदर लोक-गीतो म से कौन-से गीत चुन जायें कौन-से छोड दिए जायें यही समस्या है। फिर भी स्थानाभाव के कारण थोडे ही नृत्य गीत यहा दिए जा सकते हैं।

चल पागी जो जाणा मेरी प्यारिए, चल पागी जो जाणा है।
पागी री जोता सोहणी-सोहणी नारा, स ता बणाणी तेरी नणा हे।
पागी केहडी ठागी, सोहल केहडा जोरा, मन ता रखणा धीरा है।
पागी रे जोता तिलमिल पाणी, स ता में पीणा जरूरा है।
किनी बोट कराया उत्थी नोटली रा नाचा, किनी बो पीती हो सरावा है।
मे ही वो कराया उत्थी नोटली रा नाचा, मैं ही पीती बो सरावा है।

एक अय गीत की बहार देखिए।

इस गीत म पाजी के प्राकृतिक सौदय एव मुदर नारी की प्रशसा की गई है।

> लच्छी बडी सुरता वाली, तू मेरे कन्ने बोल लच्छिए,
> हाय वो प्यारिए, हाय बो दुलारिए।
> पतली कमर झकी जादी,
> तू छोटा घडा चुक लच्छिए।
> हाय वो पियारिए, हाय बो दुलारिए।
> अधी अधी राती तू आया,
> मितरा ए कम बुरा किता हो।
> इक मेरी बाह तें मरोडी,
> मितरा दुजे लोई फाडो हो।
> इक ता रोटी पकाई मेरे मितरा,
> दुज त नी ए खादो हो।

इस गीत म नायिका की प्रशसा करते हुए सवेदना प्रकट की गई है और साथ म नायिका की करुणा और वियोग का जिक्र है।

भौंरा

> लाल तेरा साफा ओ भौंरा, मोर केरी कलगी ओ।
> मोरे करे कलगी ओ जानी, बणी बणी पुदी ओ।
> चिटटा तेरा चोला ओ भौंरा, काला तेरा डोरा ओ।
> *नाली नाली खिजो ओ जानी,* रोई रोई *सिजी ओ।*
> रावियां दे कड ओ जानी, मोटरा चलो री ओ
> मोटरा चलो री ओ जानी, रोणका लगा री आ।
> चम्बे रे चुगाना ओ जानी, बीजली दलो री ओ।

मिजरा लगी री ओ जानी, रौणका लगी री ओ।
मिजरा रे मेले ओ जानो, बणी तणी जाणा ओ।

चम्बा के लोक कवि को अपनी धरती स कितना प्यार है गौरव है।
इस गीत म नायक की सुन्दरता का मनोहर चित्रण है।

चम्बे दीया धारा

गोरी दा मन लगेया चम्बे दीया धारा।
घरधर टिकलू घरधर बिंदलू,
घर घर बाकिया नारा, गोरी दा मन ।
चम्बे पौया धारा। हरिया ते भरिया,
ठडिया पौण फुहारा। गोरी दा मन ।
चम्ब दीया धारा। की की बिकदा,
निम्बू नरगी अनारा। गोरी दा मन ।

इस गीत म चम्बा और चम्बा की सुन्दरियो की प्रशसा की गई है।

सभी लोक-नत्यो का मागदशन उन नत्यगीतो द्वारा होता है जिनके द्वारा प्रकृति पारस्परिक व्यवसाय देवभक्ति ऋतु और धार्मिक अवसरो तथा असाधारण स्त्री-पुरुषो प्रम युद्ध इत्यादि विषयो पर प्रकाश डाला जाता है।

डा० सत्येन्द्र न इस विषय पर सारगर्भित प्रकाश डाला है

नत्य मनुष्य की सम्पूण और समग्र अभिव्यक्ति है। नख स सिख तक क अवयव इसम थिरक्त हैं एसी सकलावयवा, कला ग्राह्य उत्तजना म सुख स सहजात ध्वनि भी निकलगी ही। इसी स नत्य क साथ गीत सहजात माना जाना चाहिए। यह सहजात ध्वनि गीतध्वनि कही जा सकती है क्योकि नत्या की गतियो और मुद्राओ की भाति इसम ताल और गति की स्वच्छन्दता मिलती है। गति ध्वनि के स्वर म तय श द भी आ जात हैं। नत्य की गति और तत्सहजात ध्वनि की नहर स्वाभाविक रूप म अलग-अलग नही हुइ। यह कला विकास म विभदक प्रवत्ति से आग चलकर पथक किये गये नत्य का नत्य क रूप मे अभ्यास किया जान लगा और गीत का गीत के रूप म। फिर भी हम लोक क्षत्र और अभिजात्य क्षत्र दोना स्तरो म एस नृत्यगीत मिलते हैं जो गठजोड़ किये हुए हैं। नृत्य की अपनी गतियां अपना निजी अथ रखती हैं वह अथ मनुष्य की मनोपिता द्वारा आरोपित नहीं होता।

जिला मण्डी का लोक जीवन भी समद्ध लोक-सस्कृति की परम्परा से जन जीवन म मिठास और मधुरता घोलता रहता है। यहा के लोक-नृत्य और नृत्य

गीत भी हिमाचल प्रदश के अय क्षेत्रो की तरह चित्ताकषक और मनोहर हैं। *असख्य नत्यगीतो म से कुछ यहा उदधत किए जा रहे हैं।*

निर्मण्डा रोए बाहमणिए

निमडा रोए बाहमणिए हो
पया बरखा रा छाला भलिए, निमडा—1
ढाठू सग्या एसा बाहमणिए रा—2
पया बरखा रा छाला भलिए, निमडा रोए—3
भुख लगी एसा बाहमणिए जो,
खाई लेणा गरिए रा गोला भलिए, निमडा रोए—1
सोख लग्या एसा बाहमणिए जो—2
पी लेणा नालुए रा पाणी भलिए, निमडा रोए—1

इस सुदर गीत म निमण्ड गाव की नायिका की सुदरता का वणन है।

कलाश वासी

हाथा लया लोटा, काछा लई धोती
हो मेरे शम्भु समुदर न्होण चली,
हो कलाश के वासी सकट सभी के तू हरी ले
तेरे जे कलाशा रा भद नी पाया
हो भोले शम्भु समुदर न्होण चली,
हो कलाश के वासी सकट सभी के तू हरी ले
जिने जे भी मागया, तीने तेहड़ा पाया,
दुनियन रा सारा दुख दूर भगाया,
हो भोले शम्भू समुदर न्होण चली।

इस गीत मे महादेव की स्तुति की गई है।

मणिए ओ

सिर तेरा कापला जुटू चादी रा
साणा मणिए ओ।

घर दालू हिलण चीला टाकदे ।
जाणा मणिए ओ ।
खूण रे मुकदमे देणा कालू वकीला
देणा मणिए ओ
हाथा वे चिमटा काछा नाथरी
झोली मणिए ओ
सिर तेरा कापला जटू चांदो रा
लाणा मणिए ओ ।

इस गीत म नायिका क प्रेम म जो किसी का खून हुआ उसके उस बचाने क लिए प्रमी वकील खडा कर उस बचा लेगा ।

शिमला, सोलन और सिरमौर क्षत्र म तो घर घर गाव-गाव लोकनृत्य और नत्यगीतो की भरमार रहती है। कोई उत्सव मना या त्योहार ऐसा नही, जो इनके विना पूरा समझा जाता हो। नित्य नये-नय गीत उभरते है, बनते हैं और पुराने नत्यगीत अपने पुरानेपन के साथ जनजीवन का मोहित करते रहते हैं। इस क्षत्र का शायद ही कोई एमा गीत हो, जो नत्यगीत न हो। गीत और नत्य का आत्मा और शरीर का सा साथ है। कुछ गीतो की पक्तिया यहा दी जा रही है।

परसरामा

एरे बोनो खूनिया परसरामा म्हारे बोलो देखणो धोया
एकी भाइये हिकडू छुहणो दूज बोलो भाइये होया
पोरे कर एसा भूजो री कचनी म्हारे गोलो देखणो धोया
एकी खता रे मटक बीके, दूजे खता रे आलू
बडो भाभी री बेसर बीकी, छोटी भाभी रा बालू
बालू बोने खूनिया परसरामा छोटी बोलो भाभी रे बालू
ठारा शोआ रे मटर बीके, बारा शोआ रे आलू
घोरो बशी मुकदमा खलू, नई जुणगे छाडू
छाडू बोलो खूनिता परसरामा, नई जुणगे छाडू

इस गीत के नायक ने किसी यक्ति को मार दिया था। फासी से वचने के लिए नायक क घर का सारा सामान बिक गया और कद भुगतनी पडी।

नणा लाडिए

चीटलो चादरू लाला धारियो कूणी बणाओडी बणो लो
कूणी बणओडी बुणो मरी नणा लाड़िए, कूणी बणाओडी बुणो लो ।

सूलडे जपे नणु लाडिए लोगू ता दूरा का शूणो ओ
दूरा का शूणो ओ मरी नेणू लाडिए, लोगू ता दूरा का शुणो ओ
धर ता चिणे नेणा लाडिए, लोहे घडनी गजा लो,
घडनी गजा ला मेरो नेणा लाडिए।
वशी तो रोहणे तागे आगे, करी लणा पेउके मजा लो,
पेउक मजा लो मेरी नणा लाडिए।
माहणू तो चइ जिवा लागदे, घर चई खिडकी आल लो,
खिडकी आल लो मेरी नेणा लाडिए।
पौलू ता दंदे एंरे लगणा, शा चई बालिए बाने लो,
बालिए बाले लो मेरी नेणा लाडिए।

इस गीत की सुदर नायिका की मनोस्थित का लोर कवि न सजीव चित्रण किया है।

बिंदिए

हाथो दो घटरी बाही चमको, घडो रे बिंदिए जियालाला,
चालो स्कूलो खे रोई रास्ते, खडो रे बिंदिए जिलालाला।
पोरा बोलो ठ्योग पोडा ऊरा साम्हणा फागू रे, बिंदिए जियालाला
केह्ली तरी जिंदडी सारो दुनिया लागू रे, बिंदिए जियानाला
तेरी पराठी नागा रेडिया, बाजा र, बिंदिए जियालाला
नौऊ खुलू फार्मा बिसकुट रा, खाजा रे, बिंदिए जियालाला
धालो रा मुनशो बाबू दुरगा सिंघ रे, बिंदिए जियालाला
तरी परोठी कुत्ता भूका बाबू रे बिंदिए जियालाला
म्हारा ब वलर्कौं हाई कार्टो रा बाबू रे, बिंदिए जियालाला।

इस गीत म नायक और नायिका व प्रेम का सुदर वणन है।

लाल चिडिए

लाल चिडिए सेरे ना जाणा, सरे ना जाणा, सेरे ना जाणा
सेर पाका ला गोहू रा दाणा, गोहू रा दाणा
गोहू रा दाणा घरे ले आणा, घरे ने आणा, घरे ले आणा
गोहू रा दाणा जादा नी खाणा, जादा नो खाणा, जादा नी खाणा
तर गदुआ ऊफरी जाणा, ऊफरी जाणा ऊफरी जाणा
लाला चिडिए सरे नो जाणा, सर नो जाणा, सरे नो जाणा

सेरे पको ला माश रा दाणा माश रा दाणा, माश रा दाणा
माश रा दाणा घरो ले आणा घरे ले आणा घरे ले आणा
तेरे शटुआ ऊफरी जाणा, ऊफरी जाणा ऊफरी जाणा
लाला चिडिए सेरे ना आणा सेरे ना आणा, सेरे ना आणा।

इस गीत म व्यग्य एव हास्य का सुन्दर चित्रण हुआ है। लाला चिडिया को प्रतीक बनाकर नायकनायक न अपनी बात प्रकट की है।

कौल रामा

हैट मरया ठ्योगा चतरा देशा कौल रामा चतरा देश
खाचरी गाई ब बौणाका बशा, काल रामा बौणाका बशा
सधूरी फारा दी खींडुए चौण कौल रामा खीडुए चौण
साथी रे आदमी पन्दरह ह्नोणे कौल रामा पन्दरह ह्नोण
नीलीए मेरिय दूधा ले धाई कौलरामा दूधा ल धोई
साथा रे आदमी आसो ना कोई कौलरामा आसो नी कोई
साथो रे आदमी पन्दरा आसो कौलरामा पन्दरा आसो
सन्धुए जागल लाइणी आगा कौलरामा लाहणी आगा
नीनिए मेरिए खाए ना घासो कौलरामा खाए ना घासो
खाचरी गाइ बशी बराधा कौलरामा बशा घराणा।

इस गात के गायक की एक रात जिस प्रकार मत्यु हो गइ उसकी याद को ताजा रखन क लिए इस गीत मे उस स्थिति का वणन है।

बागडा के जनपदीय क्षत्र ने भी नत्यगीता को जन्म दिया है जो दीघकाल से पहाडी जनमानस पर अपनी छाप डाले हुए हैं। आज भी युवक समारोह पर स्कूलो या कॉलिजो म किसी अन्य उत्सवो पर इन नत्यगीतो की गूज कानो को तृप्त करती रहती है।

डा० सत्येन्द्र ने ठीक ही कहा है —

प्रत्यक नत्य की अपनी स्वरलहरी होगी, क्योकि नत्य और स्वर समग्र मानवीय अभिव्यक्ति म अविभक्त और सहजात हैं। यह बात आज भी देखने को मिलती है। जसा नत्य वसा गीत या जसा गीत वसा नत्य। गीत के लिए नत्य हाता है और नत्य क लिए गात होता है। आदिम या मूल स्थिति म दोनो एक दूसर क लिए होते हैं। दोनो मिलकर ही कला की पूण इकाई बनती है।

पानो गीत की पंक्तियां देखिए —

पार घटे कणका दे तोडे
माता बीया कणका—जो अइया ओ।
पार घट आई नीली लारी
कुण परदेशी आए पौहणे ओ
हेरे मेरी पानो री जवानी
पानो मेरी हलवे रीड़ ली ओ
पानो मेरी छोटी है कि मोटी,
पानो जेही गुजरा री फोटी ओ,
कागडे ते आया वणजारा
पानो हत्थे बगड़ू चढ़ाणे ओ।
इक्की हत्थ साबण लगाणा,
दूए हत्थे बगड़ू चढ़ाणे ओ।
जली जाओ पानी तेरे हत्थड़ू
बगड़ू रा किता नुकसाना ओ।
हत्था केरी गाल ना तू देंया ओ,
बगड़ू दा दिंगी हरजाना ओ।

इस गीत म नायिका अपन प्रेमी की प्रतीक्षा म खड़ी स्वप्न बुन रही है।

बाकु देया चाचुआ

हऊ ता गलानिया सच बो,
मेरे बाकु देया चाचुआ
मेको बी लई चल कछ बो,
मेरे बाकु देया चाचुआ
अप्पू ता चल्ला मुआ नौकरी ता चाकरी
साकी ता देई गोया खुरपा ता दातरी
लकड़ुए चली गई घस बो
मेरे बाकु देया चाचुआ
रोटियां पकादिया जो गरमी लगदी,
भाड माजिदिया जो सरमा लगदी
निक्का जेहा नौकर रख बो,
मेरे बाकु देया चाचुआ।

इस गीत की नायिका का पति नौकरी पर जाता है और नायिका अपनी व्यथा लोक-गीत द्वारा प्रस्तुत करती है।

उचिया ता रोढ़िया

उचिया ता रोढ़िया ओ बगला पुआदी, बगला पुआदी,
लमिया रखादा काता।
उचिया ता रोन्दिया में खूआ दुआदी, खूओ दुआदी
लमियां सटादा लजरा
उचिया ता रोढ़िया म बाग लुआदी, बाग लुआदी
फूल नुआदी मेरे सजना।

इस गीत म बागन्न क पहाड़ा की प्रशसा करत हुए सपने बुन रही है।

शिमला क्षत्र की तरह सिरमौर क्षेत्र क नृत्यगीत भी यहा के लोक-नृत्या का एक अभिन्न अग बनकर युग युग से लोकमानस का मनोरजन करत रहे हैं और यहा की परम्पराओ का इतिहास अपन दामन म समेटे हुए हैं। उसी स्वर्गिक आनन्द की अमूल्य माला स कुछ मणक यहा प्रस्तुत करने की चेष्टा की जा रही है।

बाबुआ जोगिंदरा

कुटि लोओ चिजोड लाए लोय फाके मामा
ऊबे लागे छापरो बटरी झमाके मामा
बाबुआ जोगिन्दरा बटरी झमाके मामा
डिगरो री किदरो धाले पादे गाव मामा
डिगरों री किदरा धाले पादे गाव मामा
छातो लिख काजला समितर रा नाओं मामा
डिगरो रा किदरा काइयो रे काड़े मामा
कब स्योण समितरा कब रोहण राड़े मामा
बाबुआ जोगिन्दरा कब रोहणे राड़े मामा।

इस गीत म नायर नायिका क साथ जीवन भर साथ रहने की कसम खाता है। दाना क प्रेम की कहानी इस गीत म उभरी है।

रतनिए

ऊब ऊबे, ऊब—
चिरो क्षाणियो धोयो रतनिए
हसण क खतण के म्हार बालको रा जोयो रतनिए।
एक हाथो व क्षाड़णा, एके हाथ छाबरो, रतनिए

छोटे छोटे तेरे हाथड़ू काली लम्बडी आखटी रतनिए
फूली करोला फूलणू, डाली फुलाली घाई रतनिए
तेरे रोजके रूशणे, हामा किचलो घाई रतनिए
डूगे धारा रे बाथुआ, लाल लम्बड सिल्ले रतनिए
मरी जावे भला बिछडे पछी होई रो मिले, रतनिए

इस गीत की नायिका के प्रति नायक की प्रेम भावनाये सु दर रूप स प्रकट हुई हैं।

सौयणा

हो सौयणा, पीपली रा बूटो हो सौयणा।
जागली आठो दुर्गासिघी कुमो रे बूटी, हो सौयणा
बूटो आणलो कुमा रे आणो सरजो रा सूटो, हो सौयणा
बूटो ना आणे रावडो, बाटो हाडदे चूटो हो सौयणा
थाणो गामे कूलगी लागी ढोलो दी गीओ, हो सौयणा
हो गीओ दी पौडी नाचदी तेसो सादिए री धीओ, सौयणा
हो, ढोबदी नाच सौयणा लागो कलिए ख पौता, हो सौयणा
हा खोशटा आणे रोगवाहणी ताख हाथो के छौता हो सौयणा
हो ऊबा गावट कूलगो रा हुन्दे कूलगो रे फोरे हो सौयणा
बोलो रीतो भाजोओ कोटदी ऐबे डवणा रे घौरे, हो सौयणा
हो केई तो कौरे सौयणा तू जोओ खज हुडा हो सौयणा
हो, रेलू कुमीया मुखदे भाजे कोलिया रे शौडा हो सौयणा

इस गीत म सुन्दर नायिका के कई प्रेमियो के प्रेम प्रदशन का आकषक चित्रण है।

झूरी सिरमौर और शिमला जनपद की प्रसिद्ध लाक गीत शली है जिसके द्वारा गायक जीवन की गहरी बात प्रकट करन म समथ हाता है।

झूरी

टाटे गे ठौगडी ठौगडे के टाटी उखलो दी शाटी सातू ज बाटी,
जतणी गोती र्होनो री झूरिए तेतणी भुखया हामे काटी,
कांहड रा कोथरा नेवलो रा पोलो, कोई गिरी झूरिए गुनलो राडे,
पाणी जई बौशणे खे दाडिए औलो, पाणी जई बोशण खे।

औशके चबडे पोरकी मागो । तोनो कोई नी देई दो झूरिए ।
पालटे डायमो औसो जो मागो, पालटे डायमो रे ।
भडो रा गाभटा दूधो नी मोहियो रा पोन्दा,
बूढ़ रे भाजी रोहदी झूरिए,
नौआ नी गाबरू ता कुए नींदा नौआ नी गाबरू रे ।

कुल्लू शिमला, सोलन और सिरमौर के नृत्य गीतो का परस्पर बहुत आदान प्रदान हुआ है और होता रहेगा । शिमला क्षेत्र के नृत्य गीत सिरमौर, कुल्लू क्षेत्र और यही नहीं कुछ गीत हिमाचल के अन्य भाग तथा बाहर भी लोकप्रिय हुए हैं और सिरमौर के शिमला क्षेत्र में प्रचलित और लोकप्रिय रहे है । आशा है यह आदान प्रदान पहाडी भाषा की समृद्धि के साथ बनता रहेगा ।

नृत्य-गीतो की परम्परा में बिलासपुर, नालागढ जनपदीय क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के अन्य क्षेत्रो से पीछे नही । इस क्षेत्र में गिद्धा नृत्य अधिक लोकप्रिय है ।

गिद्धा—1

कल उडी गया भौंरा दूरा दूरा
उड उड भौंरा मेरे कन्ना ते बठया
काटे दा करी गया चूरा चूरा
उड उड भौंरा मेरे मत्थे ते बठया
बिंदिया दा होई गया चूरा-चूरा
उड उड भौंरा मेरे नक्क ते बठया
बालए दा होई गया चूरा चूरा
उड उड भौंरा मेरी बाही पर बठया
गजरे दा होई गया चूरा चूरा
उड उड भौंरा मेरे हृत्य ते बठाया
मुंदिया दा होई गया चूरा चूरा ।

इस गीत में प्रेमी भौंरा की निठुरता को बार-बार दोहराया गया है ।

गिद्धा—2

उड़ो जाणा ओ बसतिए तेरा रमान
खद्दरे दी कुरती तो इतणा गुमान
ज होती ए रेशमो की उडी समाण
खद्दर दा चादर तो इतणा गुमान

जे होता ए रेशम का तो उडती समाण
खद्दर दी सुथन लो इतणा गुमान
जे होती ए रेशम की तो उडती समाण

इस गीत म नायिका के घमड की निरथकता ही दिखाकर जीवन के सत्य की ओर उसका ध्यान दिलाया गया है।

इसी प्रकार यह नृत्यगीत भी लोकप्रिय है।

लम्बडा झलम्बडा

हो मेले जाणे नी देंदा—2
लम्बडा झलम्बडा बहुत ही बुरा।
अगुलिया जे मेरियाँ रौंगा दीया फलिा 2
छल्ला मुद्री पाणे नी देंदा, हो मेले जाण नी देंदा
लम्बडा झलम्बडा बहुती हा बुरा।
मत्था बे मेरा बदली दा चद ब—2
टिकलू बिन्दल लाण नी देंदा हो मल जाने नी देंदा,
लम्बडा झलम्बडा बहुत ही बुरा।
हखी जे मरियाँ अम्बु रोयाँ पखियाँ—2
कजला सुरमा पाणे नी देंदा, हो मेल जाण नी देंदा,
लम्बडा बोहत ही बुरा।

इस गीत को नायिका अपने प्रेमी से कहती है कि उसका घर वाला उस न मल जाने दता है और न हार शृगार करन दता है। वह बडा ही खराब है।

लाहौल स्पिति अपन प्राचीन वभव और गाथाओ क लिए अधिक प्रसिद्ध है। लोक जीवन की परम्परागत थाती लोक-नत्य एव नत्य गीत अपन प्राचीन सौंदय के साथ वतमान की चकाचौंध म भी जीवित रह पाए है तो उसका श्रेय उसमे निहित लोकमगल और कल्याण की भावना को दें तो अतिशयोक्ति न होगी।

टशी कलजम

पारे बाण ओ एकी मिरगे भागें ओ—2
पुतरा टशी कलजम हेडे ओ त्यारी ओ—2
माई तों बाबू ए समझाणे लाई ओ—2
पुतरा टशी कलजम मनुणे री नाई ओ—2
लाडी ता जिला जोम समझाणे लाई ओ—2

पुतरा टशी कलजम मनुण री नाई ओ—2
पारे गणा ओ राजा राजा हिंवे ओ—
पुतरा टशी कलजम बदूका सवारी ओ—2
पुतरा टशी कलजम बदूका भारी ओ—2

इस गीत म नायक जगली जानवरो का शिकार करने जाना चाहता है और उसके मा बाप और पत्नी उसे जाने से रोकते हैं पर वह तयार होकर चला जाता है।

छोटा शासा चमक ओ

पावर हौंसे कामा ओ छोटा शासा चमक ओ।
सोस्कारे कामा ओ ।
पाणी पावर हौंसा और छोटा शासा चमक ओ।
घमवीरा आया ।
केलगा बिजुली लाइटा ओ छोटा शासा चमक ओ
घरे घरे लाइटा ओ ।
बिजुली रा तारा ओ
लवरा मगया ओ ।

इस गीत द्वारा लोकगायक ने बिजली पानी की सुविधा पहुच जाने के कारण गाव की चमक का वणन किया है।

रूपी राणी

मूरण शको कूल्ह शूकी पाणी नाईं टी पूज।
गुशरी पाणू डारा शूकारा गईं ज।
बम्ब आई उदटू रोडा राणे री प्रोडी काडी ज।
राण री प्रोडी काढी ज पोती पोती री हुरी ज।
पाती री अडू राज काडी कुत्तो बाटा ज।
ऊदी मामा टोटू माइता माना सूवा कोली ज।

यह घुर गीत रूपी रानी के बलिदान की गाथा है। रूपी रानी चम्बा के राजा की बहिन थी और घुशाल के राजा की पत्नी। कहते है लाहुल के घुशाल गाव म पानी नही था। सयोगवश वहा एक साधु पहुचा। उसने पानी के लिए बलिदान ही एकमात्र रास्ता सुझाया। बलिदान के लिए पहले राजा की काली कुत्ती का नाम सुझाया गया लेकिन उसका बलिदान सफ नही हो पाया। फिर

राजा की बिल्ली का बलिदान सुझाया गया, लेकिन वह भी तय नहीं हुआ। तब राजा की पत्नी रूपरानी का बलिदान सुझाया जाता है और वह तय भी हो जाता है। बलिदान के फलस्वरूप गुशाल गांव में पानी आ जाता है। सदियों से लाहुल वासी इस बलिदान गाथा को इकट्ठे होकर घंटों तक गाते रहते हैं। प्रस्तुत पंक्तियां गीत के आरम्भिक भाग की हैं।

प्रासंगिक कथागीतों का आंशिक रूप प्रस्तुत किया गया है।

हिमाचल प्रदेश के अथाह लोकगीतों-नृत्यगीतों के भण्डार में से कुछ लोकप्रिय गीतों की पंक्तियां चुनकर मेरा उद्देश्य केवल यही है कि सारी आनन्ददायक वस्तुओं के रसास्वादन का परिचय थोड़ी मात्रा में भी सम्भव है, जिसके लिए हिमाचल प्रदेश की यह कहावत साक्षी है—'चावलो री एक गुलटी देखी, सारा हांडा नी खरोलो' (चावल का एक दाना देखते हैं सारी हांडी को नहीं देखते) वर्गीकरण प्रस्तुतीकरण की सुविधा के लिए किया गया है। वस लोक-गीत तो वास्तव में देश काल की सीमा में नहीं बंधते हैं। यही उनकी श्रेष्ठता का द्योतक है और शताब्दी के थपेड़ों में जीवित रहने का प्रमाण भी है। इन पुराने नृत्यगीतों का संग्रह अभी तक छुटपुट रूप में तो हुआ है, परन्तु विस्तृत रूप में सभी लोकगीतों का संग्रह, उनकी पृष्ठभूमि, ताल, लय, छानबीन, टेपरिकाडिंग इत्यादि अभी तक नहीं हो पाया।

लोक-नृत्यो का सरक्षण एव विकास

लोकाचलो म एकता समानता, जन मनोरजन प्रदान करने म लोक-नत्यो की भूमिका सदव ही महत्वपूण रही है क्योकि लोक-नत्यो द्वारा जन अभिरुचि मानव की सौदय उपासना जनमानस की उमगें प्रकृति का रग वभव ग्राम्यजीवन के सघष और श्रम और मन की बधनमुक्त उडान प्रतिबिम्बित होती है। सरलता, सवेदना सहकारिता स्फूर्ति रागवभव तथा शक्ति के सगम लोक नत्यो मे सम्पूण रूप से प्रस्फटित होती है और सामाजिक एव सास्कृति-सचतनाक तात्विक गुणो की जविक गरिमा प्रकट होती है। वास्तव म लोकनत्य लोक भावना की प्राणात्मा है और इसमे लोक सस्कृति चिरायु होकर कुसुमित होती है। चूकि लोक नृत्यो एव लोक नाटयो मे लोक कला की जीवत सास होती है इसलिए य लोक कला के नसर्गिक प्रतिफलन स सीधी पहचान करात है।

लोक-नत्यो के ऋतु पव महोत्सव त्योहारो आदि अवसरो पर आयोजन की परम्परा प्रारम्भ स ही रही है। अत लोक-नृत्यो को जीवित रखने और उनको विकास की गति देने का श्रेय इही पर्वो महोत्सवो को है। ऐसे अवसरो पर जो लोक-नत्य आयोजित किए जाते हैं उनकी प्रकृति सास्कृतिक विकास कृषि उन्नयन और धम सचतना आदि स सश्लिष्ट होती है।

भारत म नत्यो का क्रमबद्ध इतिहास निर्मित करना अत्यन्त कठिन है। नत्यो के अनेक रूपों क उदाहरण हम पुरातत्व अवशषो मुद्राओ इतिहास साहित्यकारो, कलाकारो और सम्राटो की वशावलियो मूर्तिकला और सगीत म उपल ध होते हैं।

भारत म नत्यकला मिथ और पौराणिक कथाओ का असाधारण सम्मिश्रण है और इसी स भारतीय जनता को जनजीवन और धर्म म इसके महत्वपूण स्थान के प्रमाण मिलत हैं।

प्राय नत्य को भारत म दिव्य उत्पत्ति से जोडा जाता है। आख्यानो म वणन मिलता है कि एक बार देव इद्र ने ब्रह्मा स प्रार्थना की कि वह देवताओ के योग्य मनोरजन की रचना करें, ताकि साधारण जन की पहुच भी वदिक प्रजा तक हो सके। फ़ुलक ब्रह्मा न चारो वेदो स प्रमुख विशेपताए चुनकर पाचवें वेद—नत्य का

विकास किया।

ऋग्वेद स गीनि काव्य, यजुर्वेद से भाव मुद्रा, सामवेद स सगीत तथा अथर्ववेद से भावनात्मक एव सौन्दर्यात्मक अश लेकर नाट्य वेद की रचना की गई। इसक बाद ब्रह्मा न भरत मुनि को विधान और कला म दक्ष बनाकर नत्य को लोकप्रिय बनान का काय सौंपा।

लकिन इतिहासकारो और नृत्यकला समीक्षको की धारणा है कि स्थानीय आचलिक लाकनत्य ही धीर धीरे समय और सभ्यता क विकास के साथ साथ विकसित होकर श्रेष्ठ परिष्कृत चिरजीवी नत्य शली के रूप म उभरकर सामने आय, जिन्ह भरत मुनि न सिद्धान्त का रूप दिया। भारत म लाकधर्मी नाट्य परम्पराए अपना रूप ग्रहण कर चुकी थी। इन परम्पराओ न ही नाट्यशास्त्र की निर्माणकला का काम किया।

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र रगमच पर एक वहत कोश है। इस शास्त्र क 37 अध्यायो म से पाच सीधे नत्य से सम्बधित हैं। रगमच, नृत्य, नाटक सगीत वक्तत्वकला अलकारशास्त्र, सौन्दयशास्त्र और व्याकरण पर अलग अलग अध्याय हैं। फिर भी भारतीय परम्परा म सभी प्रकार की प्लास्टिक और अभिनय कला नाटक और रगमच द्वारा पराकाष्ठा पर पहुच हैं।

नाट्यशास्त्र म भरत मुनि ने नत्य के दो भाग किए हैं। एक नत्य अमूत रूढ-शली क अनुसार अकित गति और मुद्रा का प्रदशन और दूसरा नत्य व्याख्यात्मक नत्य, जिसक द्वारा प्रत्यक गति और चष्टा को अथपूण बनाया जाता है। इसके साथ-साथ नत्य म ताण्डव नृत्य गतिशीलता और पुरुषोचित गुणो क लिए प्रसिद्ध है और लास्य नत्य इसका सूक्ष्म, मनोहर, ललित, स्त्रीयोचित प्रतिरूप होने के कारण प्रसिद्ध है। भारत के सभी नृत्यो क मूल से इन दो प्रमुख नृत्यो की भाव भूमि है।

नि सन्देह नत्य की अपनी भाषा होती है जिसे हम चष्टा या वृत्य (हावभाव) द्वारा व्याख्यात्मक और अलकारिक भाषा कह सकत ह। इस साकतिक भाषा म हाथ और उगलियो की 105 मुद्राओ द्वारा बोल गए शब्दो की तरह प्रभावशाली अभिव्यक्ति होती है। भारतीय परम्परागत रगमच क तीन मूल तत्व है—सगीत, काव्य एव नत्य। इनका परस्पर गहरा सम्बध है और पूण सफलता के लिए एक दूसरे पर निभर करत हैं।

इस परिप्रेक्ष्य म यदि हिमाचल प्रदेश के लोक-नत्य का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि हिमाचल प्रदेश के लोक-नत्य की सजीव कल्पना की उपमा यदि मा दुर्गा की असख्य भुजाओ से या नृत्य क अधिष्ठाता नटराज शिव की 12 ताडव मुद्राओ स की जाए तो निराधार न होगा। एक ओर एकीकृत नीरवता, शात समचितता की प्रतीक हैं और दूसरी ओर विभिन्न रूपों में शक्ति का सतत

अभिनय है। लोकधर्मी नृत्यों एवं नाट्यों की पृष्ठभूमि भी प्राचीन परम्परा की कड़ियों से निरन्तर जुड़ी रहती है क्योंकि उसमें मिट्टी की भीनी गंध सदा सुवासित बनी रहती है।

हिमाचल प्रदेश के किसी अलग्भित नृत्य का जिक्र असंभव है। इसकी अपेक्षा हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जनपदों में विभिन्न स्तरों पर लोक-नृत्यों की विभिन्न परम्परायें उपलब्ध है। प्रत्येक जनपद की लोक-नृत्य परम्परा को कला के रूप और शैली के विकास की काल और समय समय की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति की पृष्ठभूमि के संदर्भ में समझना होगा। इनमें जटिल सांस्कृतिक प्रतिमान की विशेषताओं की परतें उपलब्ध हैं, जिनके कारण यह जीवित रह और फलत-फूलते रहे। हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों के विभिन्न रूप समिष्टि के ही भाग हैं।

जन-जातीय लोक एवं शिष्टकला नृत्य की अपना अपना महत्त्व एवं विशेषताएँ हैं। हिमाचल प्रदेश में यह सभी लोकनृत्य धीरे धीरे एक दूसरे से हिल मिल रहे हैं, एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं और कई बार वे साथ-साथ प्रदर्शित हो रहे हैं। इन लोक-नृत्यों में विचारों विषयानुक्रम और रूपों में गतिशीलता है। बाह्य एवं आंतरिक प्रभाव समय की गति के साथ आते हैं जिनसे लोकरचनी भी अनुप्राणित व प्रभावित होती है और उन पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। हिमाचल प्रदेश में नाट्य कला एवं नृत्यकला लोकजीवन में नया रंग और रूप भर देते हैं।

आज भी हिमाचल प्रदेश के लोकजीवन में 'करियाला स्वांग बांठड़ा और आचली के साथ साथ विभिन्न जनपदों में असंख्य लोकनृत्य अपनी परम्परागत शैली में प्रदर्शित होते रहते हैं। परन्तु धीरे धीरे एस लग रहा है कि इन लोक नृत्य की पृष्ठभूमि में जो ऐतिहासिक पौराणिक या सांस्कृतिक भाव एवं विचार कायरत हैं उसे प्रायः लोग भूलते जा रहे हैं जिसके बिना ये लोक-नृत्य धीरे धीरे निष्प्राण होते जायेंगे। यहां पर कुछ प्रमुख लोकनृत्यों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिचय दूंगा, जो लोक-नृत्य तो हैं ही साथ में जिनकी पृष्ठभूमि को नृत्य-नाटिका का रूप भी दिया जा सकता है। ये नृत्य-नाटिकायें जहां एक ओर लोकमनोरंजन का काम जिम्मेदाराना ढंग से निष्पादित करेंगी, वहां दूसरी ओर ये सच्चे तथा ईमानदार समाज-सुधारक एवं विज्ञान निष्पक्ष शिक्षक का काम भी करेंगे। कारण लोकनाट्यों में आंचलिक सामाजिक आर्थिक संघर्षों पारिवारिक कलह, रूढ़ियां धार्मिक निर्धनों या खोखली मान्यताओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया जा सकता है।

हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों एवं लोक-नाट्यों को अभी तक व्यवस्थित रूप देने की ओर कोई सुनियोजित प्रयास नहीं किया गया। इसलिए कुछ लोक-नृत्यों की समग्र पृष्ठभूमि को यदि हम गंभीरतापूर्वक अध्ययन करें तो मालूम होगा कि इनमें से कई लोक-नृत्यों की पृष्ठभूमि में महत्त्वपूर्ण पुराण कथा के अंश भी हैं। जिनका सदुपयोग इन लोक-नृत्यों को लोक-नाट्यों या गीति नाट्यों का मनोहर रूप

देकर किया जा सकता है। नि सदेह इन लोक-नृत्यो की प्राण वायु परम्परागत रजकणो से ही स्पन्दन ग्रहण करती है। बिना अतीत म झांके किसी भी लोक परम्परा को सही रूप स नही समझा जा सकता। किन्नर जनपद के कायङ के लोक-नत्य को ही लीजिए। इसके साथ कितनी सुन्दर पुराण कथा जुडी हुई है। इस कथा का जिक्र डॉ० वशीराम शर्मा ने अनजान ने अपने एक लेख(हिमभारती, सितम्बर) म किया है।

कहते हैं कही ऊची ऊची चोटियो म जो सदा बर्फ स ढकी रहती हैं बर्फ का राजा (हिमवान)युकुन्तरस अपनी दो बेटियो गौरी और गगा के साथ रहता था। एक बार विष्णु ने महादेव को कहा—"मामा! और तो सब ठीक है परन्तु बिना मामी के काम नही चल रहा? महादेव ने विवाह की स्वीकृति दे दी। भगवान विष्णु ने अष्टकोटि देवताओ को सभी जगह योग्य वधु खोजने का काय दिया। सभी असफल रहे। अन्त मे विष्णु और महादेव ने साधू का वेश धारण कर वर्फ के राजा युकुन्तरस के पास पहुचे। युकुन्तरस के महल म सोने, चांदी, लोहे, ताबे, पातल, सिक्क और लकडी के सात द्वार थे। जिन्हे प्रत्येक डेवढी पर रखे उसी धातु के नगाडा को बजाने के बाद खोला गया। युकुन्तरस को इन साधुओ का विवाह प्रस्ताव पसद नही आया और वह उन पर क्रोधित हुआ। उसने साधु के वेश म महादेव को भगाने के लिए खूब वर्फ गिराने का निश्चय किया। साधु बाहर बैठ रहे और खूब वर्फ गिरती रही। राजा ने बाहर देखा तो इधर उधर 12 फुट म ऊची वर्फ गिर गई थी, परन्तु महादेव पर वर्फ का थोडा भी अश नही गिरा था। यह देखकर युकुन्तरस की दोनो कन्यायें गौरी और गगा पर अत्यधिक प्रभाव पडा। उन दोनो ने अपने पिता को विवाह प्रस्ताव मजूर करने के लिए मना लिया। स्वीकृति की सूचना मिलते ही महादेव ने बारह सूर्य एक साथ चमकाकर एक ही क्षण म सारी वर्फ पिघला दी।

राजा युकुन्तरस ने विवाह के लिए कुछ शर्तें रखी। उसने विष्णु को बताया कि यदि प्रत्येक बाराती एक-एक बकरे का मास और 20 पथा (18 छटाक के बराबर) नमक खाले तथा बकरो की खाला को नम करके एक ही रात म सुखाकर आटा पीसने का खालटा तयार कर दे तो वह गौरी का विवाह महादेव से कर देंगे।

विष्णु ने सब शर्तें मान ली और निश्चित समय पर महादेव की बारात आ गई। राजा ने प्रत्येक बाराती के लिए बीस पथा नमक, बीस पथा चावल और एक-एक बकरा भेज दिया और बकरो को काटने को एक घन दिया। भगवान विष्णु यह सब समझ गये। उन्होने सभी बारातियो को कायङ नत्य आरम्भ करने का सुझाव दिया। कायङ नत्य म नतन करते हुए वे घन की भूमि पर एक सिरे से रगडते जाते, जिसके कारण वह घिसते घिसते कुल्हाडा बन गया। सभी बकरो को बारी-बारी स काटकर एक-एक टुकड़ा मास सभी नतक नमक लगाकर खाते

जाते। कटे बकरों की खालें पावों के नीचे दबाकर नर्तकों के पावों से वे नम होती जाती। शर्तें पूरी हो गयी और गौरी का विवाह महादेव से हो गया। महादेव साथ में गंगा को भी ले आये। इससे आगे सृष्टि की उत्पत्ति की कथा आती है। कायड लोक नृत्य में लोक नाट्य या गीतिनाट्य बनने के सभी गुण विद्यमान हैं। इस कायड लोकनृत्य के अनेक रूप हैं जिनमें बाकायन्त घरकायड छेरकी कायड, तागस कायन्त, शुना कायड, और बोनयाग छू नृत्य इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

घरक्याड नृत्य

इस नृत्य में घर (बाघ) की तरह नर्तक लोग तीव्रगति से नाचते हैं। इस नृत्य में बाघों नाटी का लोक गीत गाया जाता है। प्राय यह नृत्य तभी प्रदर्शित होता है, जब कोई शिकारी बाघ को मारता है। उस अवसर पर शिकारी के सिर पर वीरता की प्रशंसा के लिए पगडी बाधी जाती है और बाघ की खाल में भूसा भर कर उसे नचाया जाता है।

छम्म (लामा) नृत्य

छम्म या मुखौटा नृत्य किन्नौर के आदिवासी लामाओं में अधिक लोकप्रिय है। इस नृत्य का आयोजन भूत प्रेतों को भगाने और प्राकृतिक प्रकोपों को हटाने के लिए किया जाता है। इस नृत्य में सभी नर्तक मुखौटा पहनकर नाचते हैं। नर्तक दल में से दो नर्तक शेर या अन्य जानवर का मुखौटा पहनते हैं। इस नृत्य में शेष नर्तकदल इन दो शेरों को काबू में करने का प्रयत्न करते हैं जिसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि भूत प्रेत और आपत्ति को काबू में किया जा सकता है। इस लोक नृत्य के साथ ढोल लामा नरसिंगे और शहनाई बजाए जाते हैं। लाहौल स्पिति के क्षेत्रों में भी यह लोक-नृत्य प्रिय है।

मकर नृत्य (मुखौटा नृत्य)

इसी प्रकार लाहौल स्पिति के मकर नृत्य को भी अधिक सुन्दर एवं उपयोगी बनाया जा सकता है। इस नृत्य की पृष्ठभूमि में एक कथा है। कहते हैं भोट राजाओं में लाग दर्मा राजा बहुत ही निर्दयी और अत्याचारी था। उसने उस क्षेत्र के धर्म और संस्कृति को नष्ट भ्रष्ट करने में कोई भी कसर न उठा रखी। उसने अनेक बौद्ध मंदिरों, पुस्तकालयों को नष्ट किया। अनेक लामाओं को मौत के घाट उतार दिया। वह एक बार जब सार्वजनिक रूप से विजय उत्सव मना रहा था तब उस दौरान में स्थानीय जनता ने मकर नृत्य का प्रदर्शन किया। लोक नर्तकों में से एक बहादुर नर्तक अपने कपड़ों में छुरा छिपा कर लाया और नाचते नाचते राजा के समीप पहुचा और छुरे से दुष्ट राजा की हत्या कर दी। तब से यह

लोक-नत्य लाहौल का लोकप्रिय नृत्य समझा जाता है। आज भी राक्षसवत्ति को समाप्त करने का सदेश द सकता है।

लालडी नृत्य

कुल्लू जनपद के लोक-नत्य लालडी म लोक-नाटय या गीति नाटय बनन की असीम सभावनायें हैं। इसम स्त्री नतकदल दो पक्तियो म बट जात है और आमने सामने खड़ हो जात हैं। एक दल लोकगीत की एक पक्ति गाना आरम्भ करता हुआ कमर झुकाकर दोनो हाथो म तालिया बजाता है। और जब तक गीत की एक पक्ति पूरी नहा हो जाती नतक पक्ति आग बढ़ती जाती है और दूसरा नतक दल पीछे हटता हुआ नाचता है। जब लोकगीत की पक्तिया पूरी हो जाती हैं तब पहली पक्ति वाला नतक-दल खड़ा हो जाता है और दूसरी नतक पक्ति उसी तरह आग बढ़ती है। यही सभावनाए कुल्लू के हरण लोक नत्य और फागली लोक-नत्य म भी हैं।

हरण नृत्य

कुल्लू जनपद म एक और लोक-नृत्य हरण भी लोकप्रिय है। इसका प्रदशन प्राय रात को ही प्राय सभव है। यह चम्बा जनपद मे वहा के लोकनाटय हरणे तर के रूप म भी कुछ विभि नताओ सहित प्रदर्शित होता है।

फागली नृत्य

कुल्लू जनपद म फागली का त्योहार विशष रूप स मनाया जाता है। इस अवसर पर लोक-नत्य म कुछ विशष नतक राक्षसो का घास फूस का लिबास और मुह पर प्राचीन समय के लकडी के बने हुए राक्षसो के मुखौटे लगाकर नाचते है। एक एक नतक (राक्षस) इस सुदर किले म स किसी सु दर स्त्री या अच्छी लडकी को तलाश करने का अभिनय करता है, जिसस स्पष्ट होता है कि राक्षसो का परस्पर नाच तो होता ही है इसके साथ-साथ इस नत्य म देवता के हाथो राक्षसो की पराजय या दूसरी अवस्था म राक्षस के साथ समझौता की कहानी दोहराई जाती है। *इस नत्य म उन हथियारो का भी प्रदशन किया जाता है, जो इस लडाई* म प्रयोग म लाए गए थे।

सन नत्य

चम्बा के लोक-नत्यो का अपना ही बाकपन है। इन लोक-नत्यो म पागीका सन नत्य उल्लेखनीय है। हुडन (पांगी) की मनावत का यात्रा मे सन नत्य उल्टे रूप म नाचा जाता है। लोग बाए से दाए ओर नाचते है। कहते हैं कि जब प्राचीन

वाल म सन नत्य नाचा जा रहा था, तब एक राक्षस पगवाल क रूप मे दल क साथ पक्ति के मध्य भाग म नाचने लगा। वह किसी की जान लेना चाहता था, परन्तु वह पागी के दो भाईयो सन्तो और करमू को अपने स्थान से न हटा सका, उन्होने मौका पाकर सारे नतक दल को सकेत किया कि वह सन नत्य को उल्टी तरफ स नाच ताकि वह राक्षस भाग न सके और साथ साथ पवित्र धार्मिक प्रथा म स मन्त्रो का उच्चारण करते रह। सन लोक-नत्य सारी रात चलता रहा। सुबह लोगो क आश्चय का ठिकाना न रहा जब उन्होने एक राक्षस का बडा मतक शरीर धरती पर गिरा देखा। स्पष्टत लोकनाट्य का सारा ताना बाना इसम विद्यमान है।

चम्बा के डागी लोकनत्य हरनाम और घुरेही लोक नत्यो म भी यह गुण मौजूद है। यह लोक-नत्य भी प्रश्नोत्तर नत्यगीत के साथ आगे बढ़ते हैं। डागी लोक-नत्य म किसी हरिजन लडकी के प्रति किसी राजा के प्रम का नत्य गीत प्राय गाया जाता है।

घुरेही नत्य

घुरेही लोक-नृत्य म केवल स्त्रिया ही नाचती है। इसे लोकवाद्यो एव गीतो क साथ नाचा जाता है। इस प्राय दो प्रकार से नाचा जाता है। प्रथम शली म स्त्रिया घेरे म खडी होकर नाचती हैं। इसके साथ गाये जाने वाल नत्यगीतो म प्राय नारी का नख शिख वणन होता है। नतन करती हुई स्त्रिया एक-दूसर की ओर भाव भग यात्मक सकेत भी करती जाती हैं और लोकगीत भी गाती जाती हैं नृत्यगीत प्रश्नोत्तर के रूप म गाया जाता है।

डागी नृत्य

यह लोक-नृत्य भी स्त्रिया म बहुत लोकप्रिय है। यह नत्यगीत घुरेही नामक नृत्यगीत क साथ प्राय गाया जाता है। घुरही नृत्यगीत प्रश्नोत्तर शली म ही आग बढ़ता है। इसम किसी हरिजन लडकी क प्रति किसी राजा क प्रम का चित्रण है। इसम लोककथाओ क स्थान पर लोकगीतो को अधिक महत्व दिया जाता है। इस नृत्य म नतक एक गोल दायरे म एक-दूसरे से बाह मिलाकर नाचत हैं। कागड़ा, मडी हमीरपुर और ऊना क्षेत्र क लोक-नृत्यो म *चन्दरोली स्वाग, भगत* और राम लोक-नृत्यो को भी समयानुकूल ढालने तथा उन्हें गीति नाट्य का रूप दना सभव है।

चन्दरोली नृत्य

इस लोक-नृत्य का प्रचलन प्राय शीत ऋतु म रहा। इसम भाग लेने वा न

वागडा क्षेत्र मे बसने वाले प्राय झीर और जुलाह होते है। इस नृत्य म रौलू कलाकार बन ठनकर नाचता है और तबलची, लोकगायक और छणिया वाले इस नृत्य म रंग और रस भरते हैं। केवल एक स्त्री पात्र च दरौली ही इस नृत्य की मुख्य कलाकार है। ये ही दो मुख्य पात्र कृष्ण और राधा का रूप धारण कर हास विलासमय मुद्रा म मस्त होकर नाचते हैं और शेष पात्र ग्वाला की तरह इनके इद गिर्द नाचते ह। पालमपुर क्षेत्र म इसी लोक नृत्य को म ड्रूल बोलते हैं। इन लोक नृत्या के साथ मुख्य नृत्य गीत माता दिया भटा, भजन और ऋतुगीत गाये जात हैं।

भगत नृत्य

इस लोक-नृत्य को जीवित रूप म रखने का श्रेय, इस क्षेत्र के झीरो और चमारो को जाता है। इसमे भाग लेने वाले नतको को भगतिये बोलते है। इसकी कथावस्तु भी कृष्णलीला के साथ जुडी हुई है।

इस नृत्य का आरभ भी आरती स होता है। फिर विशेष वेशभूषा पहनकर हाथ म डण्डे बजाता हुआ एक नतक आता है और अपनी बात कथा द्वारा सुनाकर दर्शको का मन रिझाता है। इस नतक को भी *मनसुखा या भगतिया* या रौलू कहते हैं। साथ म कृष्ण और गोपिया अपनी लीला रचने लगते हैं। जाति और क्षेत्र के अनुसार इसम कुछ अतर भी आ जाता है। यह लोक-नृत्य रात का होता है। नतक कई रूपा म नतन करते हुए इस आकषक बनाने का प्रयत्न करते है। इस लोक-नृत्य क अय रूप लोक नाटय क रूप म प्रदर्शित होते है।

रास नृत्य

जसा कि नाम स ही स्पष्ट है इस नृत्य का सम्बध कृष्णलीला म है। वागडा क्षेत्र म 1947 तक यह लोक-नृत्य मराथी और गुसाइ लोग रचाते थे। रास नृत्य आरती से आरभ होता है। नतक कृष्ण के आगे प्राथना करते हैं। रासनृत्य करते हुए गीता के भाव, रास के लोक नतक हाथ पर या मुह या शरीर के अय अगो को हिला झुलाकर अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करते हैं। इसम नतकी का नाचना, गाना मटकना नखरे करना ही सबसे आवश्यक है। मनसुखा नतक के आगे पीछे नाचना और गाकर कृष्ण की तरह गोपी को रिझाने का प्रयत्न करता है।

स्वाग नृत्य

स्वाग को भी कई लोगो ने लोक-नृत्यो म शामिल किया है पर वास्तव म यह करयाला, बाठडा देवधान इत्यादि का ही दूसरा नाम है। नि सन्देह इसम लोकनृत्य, लोकगीत और लोकवाद्य भी एक आवश्यक अग हैं। इस नृत्य की शली

स्थान-स्थान पर बदली मिलती है। इसमें शामिल होने के लिए दक्ष नर्तक की आवश्यकता होती है। यह नृत्य प्रायः विवाह इत्यादि के समय प्रदर्शित होता है। इस लोकनाट्य के रूप में भी प्रदर्शित किया जाता है।

शिमला क्षेत्र के लोक-नृत्यों में दिवाली नृत्य और स्वांग नृत्य में गीति नाट्य के प्रयोग संभव हैं।

इसी प्रकार सिरमौरी लोक-नृत्यों में स्वांगटेंगी नृत्य द्रोड़ी नृत्य में भी नए प्रयोगों की बहुत संभावनाएं हैं। इन नृत्यों में उसी ताल और लय में गाथा गीतों का समावेश संभव है। इसके अतिरिक्त ठोडा नृत्य की पृष्ठभूमि शिमला जनपद कुल्लू जनपद और सिरमौर जनपद के नाटी नृत्य में यही संभावनाएं विद्यमान हैं।

सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो वित्तीय परिसीमाओं के कारण लोकनाट्यों एवं लोक-नृत्यों के मंचन न होने से रंगमंच तो खाली पड़े रहते हैं या बहुत कम संख्या में लोक नृत्यों एवं लोक-नाट्यों का अच्छा मंचन संभव हो पाता है। लोकाचला का अधिकांश भाग अब शहरी वातावरण से अधिकाधिक प्रभावित होता जा रहा है।

हिमाचल प्रदेश में कुछ क्षेत्रों में नृत्य मण्डलियां तो हैं, परन्तु इस व्यवसाय में अधिक कमाई न होने के कारण प्रतिवर्ष बनाकर ऐसी मंडलियां समाप्त भी हो जाती हैं। व्यावसायिक नाट्य नृत्य मंडलियों के अभाव में स्तरीय गीति नाटक लोक-नाटकों एवं लोक-नृत्यों में कमी बढ़ती जा रही है। अधुनातन प्रेक्षागृहों की कमी के कारण लोक-नाटक एवं लोक-नृत्य सिनेमा और घटिया नृत्यों से प्रतियोगिता करने में असमर्थ रहते हैं। कोई सुनियोजित कार्यक्रम न होने के कारण लोक नृत्य बिखरते टूटते और नष्ट होते जा रहे हैं। इसके परम्परागत स्वरूप में श्रेष्ठता और सुन्दरता बढ़ने की अपेक्षा घटती जा रही है। वास्तविकता तो यह है कि कौवा चला हंस की चाल और अपनी भी खो बैठा।

लोक-नृत्यों, लोक-नाट्यों की कमी और उपयुक्त प्रेक्षागृहों तथा रंगकर्मियों आदि की कमी के कारण लोक संस्कृति की इमेज (image) धीरे धीरे धुंधली पड़ती जा रही है क्योंकि शहरी संस्कृति उस पर प्रभाव डालती जा रही है। इसमें सामाजिक और लोक सांस्कृतिक जागृति की मौलिक प्रवृत्ति का विकासक्रम क्षतिग्रस्त होता जा रहा है। जितनी जल्दी यह हम रुक सकें उतना ही हम लोक नृत्यों का वास्तविक स्वरूप सुरक्षित रख सकेंगे।

मैंने बार बार समय-समय पर यह आग्रह किया है कि हिमाचल प्रदेश की कला एकादमी एवं संस्कृति विभाग, सांस्कृतिक सभाओं के अन्य कार्यों के साथ साथ यह भी कार्य है कि इन लोक-नृत्यों को जो बहुत समय तक उपेक्षित रहे, एक मंच पर लाने निखारने और लोक सांस्कृतिक की पृष्ठभूमि का ध्यान में रखते हुए उन्हें सुरक्षित रखने के लिए सामयिक, ठोस, व्यावहारिक एवं योजना बद्ध

कार्यक्रम बनाए जायें। इन कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप देने के लिए शिक्षा विभाग, लोक सम्पर्क विभाग, पंचायत विभाग, संस्कृति एवं भाषा विभाग, ग्रामीण विकास, विभाग का वित्तीय एवं प्रशासनिक सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। इन विभागों के सहयोग से प्रशिक्षण कार्योजनाबद्ध नियमित कार्यक्रम चलाया जा सकता है।

विश्वविद्यालय स्तर पर या अलग से लोक-कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहन देने के लिए राजकीय स्वायत सांस्कृतिक एवं कला केन्द्र की स्थापना होनी चाहिए। लोक कला-सृजन की स्वतन्त्रता में सरकार का हस्तक्षेप अनावश्यक एवं हानिकारक ही रहता है। पर राज्य ऐसी सामाजिक और कानूनी व्यवस्थाएं पैदा कर सकता है जिनमें कलाकार अपने आपको पूरी तरह प्रस्तुत कर सकें और अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कर सकें, क्योंकि सभी कलाओं के मूल में आत्मनिवेदन है। प्रत्येक जाति एवं जनपद का आत्मप्रकाशन अपनी संस्कृति के अनुसार ही संभव है। इस लिए सरकार हिमाचल प्रदेश एकादमी को स्वायत्तता प्रदान करे और उसे प्रतिवर्ष उदारतापूर्ण अनुदान देकर इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

आज अनेक समस्यायें इस सम्बन्ध में मुंह खोले खड़ी हैं। आज उन लोकनर्तकों और वाद्य-वादकों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। यह स्पष्ट है कि वे सब अन्य व्यवसाय द्वारा अपना पेट भर लेते हैं परन्तु फिर भी अपनी परम्परागत धरोहर के प्रति अभी तक समय देते रहते हैं। परन्तु ऐसा कब तक चलता रहेगा? यदि हम चाहते हैं कि इस पर्वतीय जनपद की सांस्कृतिक धरोहर कुछ परम्परायें सत्य, शिव एवं सुन्दरम की द्योतक हैं, उनमें समाज को आगे ले जाने में कुछ बुराई नहीं आती, अपितु समाज में इनसे मधुरता घोली जा सकती है, तो इस थाती के परम्परागत कार्यकर्ताओं के जीवनोपार्जन एवं सुधार पर भी ध्यान देना होगा। नगर में आयोजित समारोहों का लाभ नगर के लोग उठा सकते हैं परन्तु जिन जनपदों के सहारे लोक-कला आज तक जीवित रही वहां वह भी अर्थ और योजनाबद्ध कार्यक्रम के अभाव में धीरे धीरे लुप्तप्राय हो जाएगी। अच्छा हो यदि एकादमी परम्परागत लोक-नृत्य को जीवित रखने और उसे प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिवर्ष कम से कम प्रदेश के पांच प्रसिद्ध मेले जिनमें कुल्लू का दशहरा, मंडी की शिवरात्री, चम्बा का मिंजर, रामपुर का लवी, 15 अप्रैल 26 जनवरी, नलवाड मेलों और सिरमौर का रेणुका मेला के अवसर पर लोक-नृत्य कला प्रतियोगिता का आयोजन करे और इनमें से प्रथम तीन स्थान प्राप्त श्रेष्ठदलों को तथा प्रदेश से बाहर भेजने के लिए प्रबन्ध करें। जिला स्तर पर स्कूलों के मुकाबलों में जिला के श्रेष्ठ नर्तक दल का भी एक प्रदर्शन किया जाय और विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित युवक समारोह में भी उनका एक प्रदर्शन अवश्य हो। परन्तु इन प्रदर्शनों में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि लोक-नृत्य एवं लोक-नाट्यों के

के प्रदशनो म वेशभूषा सगीत प्रकाश इत्यादि पर सिनमा की बिल्कुल छाप न हो।

राष्ट्रीय स्तर पर कुछ सराहनीय काय हुआ है जसे ललितकला एकादमी की स्थापना राष्ट्रीय ड्रामा स्कूल और गणतत्र दिवस पर लोक-नृत्य समारोह का आयोजन। यही नही चोटी के कलाकारो को प्रतिवष पुरस्कृत किया जाता है। क्या यही बात हम राज्य पर नही कर सकत। स्थानीय अनेक सुन्दर लोकनृत्य एव लोकधर्मी नाटय रूपो का ह्रास होता जा रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रतिभाशाली नतक सगीतज्ञ और लोकवादको का एक रजिस्टर बनाया जाए। इसके लिए तहसील एव ब्लाक स्तर पर प्रतियोगितायें आयोजित कर लोकधर्मी अच्छे कलाकारो को चुनना होगा और उन्हे ही सगठित कर समय-समय पर अनुदान देकर प्रशिक्षित एव प्रोत्साहित करना होगा।

राज्य स्तर पर कोई भी व्यावहारिक कदम इस दिशा म नही उठाए जा रहे, ताकि लोकनत्य लोक-नाटय एव लोककला की अन्य विधाओ का सुरक्षित रखने पुनर्जीवित करने और विकास के लिए लोककला के इन रूपको अपने पर्यावरण ग्राम मेलो और मदिरो को जीवित रखा जा सके। अभी तक सरकार की ओर स लोक सम्पक विभाग क दल को कुछ चुने क्षेत्रो म भजकर काय की पूर्ति की जा रही है। जो कवल प्रचार का काय है इसम लोककला नही है।

जहा उत्तर प्रदेश की रासलीला बन्द्रावन और नौटकी हरियाणा का स्वाग पजाब की जातरा, केरल का कूडियतम आसाम का पुखिया नाट महाराष्ट्र का तमाशा और सगीत जसे लोकधर्मी नाटय का प्रदशन और उन पर विद्वान अनुसधान कर रहे हैं। कलाकार दल एव प्रदेश की एकादमिया एव सरकार उसे जीवित रखन के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। हिमाचल प्रदेश म इस दिशा मे उत्साहवधक एव सुनियोजित काय अभी तक नही हो रहा है। शहरी चकाचौध से प्रभावित नौकरशाही एव राजनीतिज्ञो को ग्रामीण कला से दुगध ही आती है। इसलिए वे इस दिशा म पग उठाने की बात उपहासपद ही समझते हैं। गाव गाव क उत्सव त्यौहार और मेले देवी-दवता और मदिर की ओर जनता की रुचि धीरे धीरे मिटती जा रही है और उसका स्थान राजनीतिज्ञ द्वारा सास्कृतिक कायक्रम न जिनमे राजनीतिज्ञो के लम्बे लम्बे भाषण रहते हैं ले लिया है। यह कृत्रिम सस्कृति कब तक जीवित रह पाएगी।

सावजनिक सचार साधनो की चकाचौध म ग्रामीण सस्कृति मुरझा रही है। परन्तु अभी भी निराश होने की आवश्यकता नही है। ग्रामीण क्षत्रो म परम्परा गत उन लोक नृत्य दलो एव लोकवादको को सदापयोग जो दवी देवताओ के मदिरो की आय राजा महाराजाओ या प्रभावशाली लोगो के प्रोत्साहन पर निभर करते थ योजनाबद्ध रूप म उन्ही जनपदा क लिए काम म लाया जा सकता है। राज्य को एक ऐसे कोष (फण्ड) की स्थापना करनी होगी, जिसस ग्रामीण क्षत्रो

और व्यवसायिक दलो को वर्ष भर म कम स कम मचन क आधार पर सहायता अनुदान प्रदान किया सक । इससे जीवन निर्वाह का मूलाधार बन जाएगा। इस आय को वह अधिक मचन एव प्रदशन स बढ़ा भी सकत हैं।

लोक-नत्यो, लोकनाट्यो एव लोक सस्कृति पर आधारित समारोहो का आयोजन अभी तक नगरो या उपनगरो तक ही सीमित रहा है। उन ग्रामीण लोगो क लिए जिनकी वह कला है, कितन मचन हुए हैं? एकादमी का मूल काय, लोककला लोक-सस्कृति एव लोकभाषा क अनक रूपो को सुरक्षित पुनर्जीवित तथा विकसित करना है। इस दिशा म किए गए अभी तक काय क ब्योरा म निराशा ही होती है।

किन्नौरी लोक-नृत्यो के प्रदशन के लिए किन्नौर के गावो म महासुई एव सिरमौरी लोक-नत्यो क लिए शिमला म चम्बा कुल्लू एव लाहौल स्पिति क उन क्षेत्रो क ग्रामो म आज तक कितन प्रदशन आयोजित किए गए ? क्या नही चम्बा के लिए भरमौर उत्सव, कुल्लू के लिए नगर उत्सव, किन्नौर क लिए सागला उत्सव शिमला के लिए हाटकोटी उत्सव हमीरपुर के लिए सुजानपुर तीहरा उत्सव गुलर कागडा उत्सव, नयनादेवी उत्सव, कमरुनाग उत्सव और सिरमौर के लिए सिरपारी ताल मनाया जा सकता है ?

इसी प्रकार इस क्षेत्र के जिन कलाकारो न नशनल स्कूल आफ ड्रामा स प्रशिक्षण पाया है, जिन्ह लोकधर्मी परम्पराओ एव लोकनत्य स सहानुभूति हो, तथा इस क्षेत्र क श्रेष्ठ कलाकारो का विशष दल गठित किया जा सकता जो इस लोक कला क विशष ग्रामो म जाकर नए युवक को प्रशिक्षित करन के लिए कम्प का आयोजन करें और उनस कुछ सीखें और उन्ह भी सिखायें। एस कदम सामाजिक परिवतन म कस रुकावट बन सकत हैं ?

इन सारी योजनाओ को कार्यान्वित करने तथा वित्तीय साधनो की जाच क लिए विशषज्ञो के लिए एक समिति की व्यावहारिक सुझावो की रूपरखा प्रस्तुत करने के लिए कहा जाए। लोककला की सुरक्षा एव विकास पर व्यय की गई धनराशि लोकजीवन को बनान के लिए व्यथ नही समझी जानी चाहिए। लोक कल्याणकारी राज्य म ऐस कदम अत्यत आवश्यक है। और उनम दूरगामी सास्कृतिक मूल्यो की कदरें छिपी हैं।

उपसहार

प्रत्यक कला जब वह लौकिक पक्ष को भुलाकर कवल व्यक्ति पक्ष की आर मुडती है ता वह अपना सामाजिक सदभ खाकर अपन को भी खो दती है। हिमाचल प्रदश लाक कला लोक-नृत्य एव लोक गीता क बार म भी यह कहा जा सकता है।

आज हिमाचल प्रदेश की लोक कला पुनर्जागरण की अवस्था स गुजर रही है। विनान और तकनीकी चकाचौध के इस युग म जो घुटन-सी महसूस होती है उसम भी लाक कला की सादगी या आत्मीयता हम आत्मसन्तोष देती है और आश्वस्त करती है कि अभी तक इस पवतीय क्षत्र की लोक कला म पहाडी जन जीवन का भरपूर स्पन्दन है, इसलिए यही यहा क जनमानस और सस्कृति की सच्ची वाहिका है। आज यहा की प्राचीन कला परम्पराओ को जहा जीवित और सुरक्षित रखन की आवश्यकता है, वहा कुछ लोक नत्यो म कुछ एस सुधार करन या एस नए लोक-नृत्यो की रचना करन की भी आवश्यकता है जिनम पहाडी लोक जीवन का अधिक स्वस्थ, सशक्त और प्रभावशाली रूप म प्रकट करन की क्षमता भी हो जिसम युगो स रौंदी गई मिट्टी की महिमा का प्रभावशाली अभिव्यक्ति एव व्यक्तिगत स्पन्दन और यहा क लाक जीवन की आनन्द धारा को प्रस्फुटित करन की क्षमता हो।

किसी भी लोक कला के इतिहास म एक समय ऐसा भी आता है जब इसक जीवन पक्ष और विधान पक्ष म प्रधानता के लिए सघष आरम्भ हो जाता है और प्राय रूप विधान ही सर्वोपरि हो जाता है। फलत कला का ह्रास हो जाता है। फिर कलाकारो मे जो आत्मनिभरता की भावना घर कर लती है, उससे प्रगति रोध और क्षीणता आ जाती है। एक अ य आवश्यकता इस बात की है कि जिसके कारण कला सजीव होती उस प्रेरणा को आत्मसात किये बिना अनुकरण भी घातक सिद्ध होता है। इसलिए उन नकली पारखियो स भी सावधान रहन की आवश्यकता है जो मिथ्या एव निराधार मानदण्ड स्थापित कर मूल्याकन करते फिरत है और सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करन क लिए सच्ची और जीवनदायिनी परम्परा स हट जात हैं। व यथ हो लोक कला को शास्त्रीय कला परम्परा म

बाधने का दुस्साहस करत हैं।

जसा कि मैंने आरम्भ म भी विचार प्रक्ट किया था कि हिमाचल प्रदेश के इन लोक नत्यो का परिचय देत समय शास्त्रीय नत्यो की तरह सारी शलियो क कोई निश्चित नियम निर्धारित नहा किए गए। इनकी लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि समय समय पर परिस्थिति और स्थान की आवश्यकतानुसार लोक मनोरजन के लिए इन्हे अधिक उपयोगी बनान के लिए इनम परिवतन, सशोधन और सुधार भी होत रहे हैं। पर शास्त्रीय नृत्यो की भाति इनके प्रशिक्षण के लिए अभी तक कोई प्रबन्ध नही। परम्परागत आधार पर ही आगे बढ़त रहे है। इसके अतिरिक्त लोक नत्य के लिए नामकरण की भी आवश्यकता पडी यह सम्भव है कि एक जगह लोक नत्य के लिए जो नाम प्रचलित है, वह दूसरी जगह न हो। इसी प्रकार इन लोक-नत्यो का वर्गीकरण करत हुए मेरा आशय यह कदापि नही रहा कि जो लोक नत्य क्षेत्र म प्रचलित है वह दूसरी जगह लोकप्रिय नही। शिक्षा और सचार के प्रसार के फलस्वरूप तथा राजकीय प्रोत्साहन के कारण हिमाचल प्रदेश के सारे लोक नत्य प्राय प्रदेश क सभी कालजो, स्कूलो तथा अय सास्कृतिक कायक्रमो म बिना किसी भेदभाव के नाचे जाते हैं और दशको पर अपनी अमिट छोड जात है।

किसी भी मानदण्ड पर आकने से यह लोक नत्य रग बिरग लोक गात लोक कला और सस्कृति के प्रेमियो के लिए विशेष आनद और प्रेरणा रखत ह। प्रकृति क गौरव पवत शिखर तथा रगीन छटा इन लोक नत्यो की लय, गीत और ध्वनि म एक नया रग रस भरते हैं। नि सदह लोक-जीवन का अमूल्य निधि लोक कला है इनक प्रति अरुचि दिखाना लोक जीवन को शुष्क और करुण बना दना है। लोक कला की भावनाओ की परिष्कृति और स्थिरता प्रदान करती है। मानव स्वभाव की भावनात्मक कमजोरी का परिणाम होगा, नतिक चरित्र म गिरावट जो किसी राष्ट्र के पतन का चिह्न है।

अभी तक बौद्धिक जगत् नगर म रहन वाल, तथा लोक-कला क महत्व स अनभिज्ञ व्यक्तियो के मन म यह पूर्वाग्रह नही गया कि नाचना गाना नीच कम और इसे केवल व्यावसायिक नतक और नतकियो तक ही सीमित रखना चाहिए। लोक कला के पुनर्जागरण का काय किसी अकेले व्यक्ति या छूमन्त्र स एकदम होना असम्भव नहा है। इस पतन और विकृति से बचाने के लिए जनता म इसके प्रति अभिरुचि बढ़ाने और इसको सुरक्षित रखने की दिशा म ध्यान दन देश और विदेश म इसके प्रति आदर भाव जगाने और अय कला-सस्थाओ से स्वीकृति प्राप्त करना इत्यादि ऐस काय हैं जिनके लिए सावधानी, गम्भीरता और सुनियोजित पग उठाने की तुरन्त आवश्यकता है। कम स कम कुछ बातो का ध्यान तो रखा ही जा सकता है। प्रथम यह कि लोक-नृत्यो क विशपज्ञो क लिए

जो इसे अपनी आजीविका बनाना चाहते है, गहन प्रशिक्षण की सुविधा का प्रबंध करना है। द्वितीय यह कि इसमें रुचि रखने वाले तथा सुसंस्कृत लोगों में इन्हें समझाने समालोचना करने और महत्त्व समझाने के लिए समय-समय पर साधारण प्रदर्शन या विशेष समारोहों का प्रबंध करना अत्यंत आवश्यक है। तृतीय आवश्यकता है प्रदेश की शिक्षा-संस्थाओं में प्रदेश के लोक नृत्यों और संगीत को पाठ्यक्रम का अंग बनाने की ओर कदम उठाना। इसके साथ आवश्यकता नहीं कि यह भावात्मक प्रशिक्षण और युवक-युवतियों के शारीरिक और भावात्मक विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चतुर्थ आवश्यकता है हिमाचल प्रदेश के सारे लोक-नृत्यों पर वृहद् प्रामाणिक रंगीन फिल्मों का निर्माण करना जिन्हें देश के भिन्न भागों देश विदेश के उत्सवों और टेलीविजन पर दिखाया जाए। इसके अतिरिक्त इन लोक नृत्यों पर प्रामाणिक सचित्र परिचयात्मक पुस्तकें अन्य भाषाओं में प्रकाशित करने की भी आवश्यकता है। और फिर देश के इन लोक-नृत्यों को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उचित प्रोत्साहन देने की व्यवस्था।

किसी राष्ट्र क्षेत्र एवं जाति का गौरव उसकी कला एवं संस्कृति के विविध रूपों संगीत नृत्य, चित्रकारी साहित्य तथा अन्य रचनात्मक साधना द्वारा बढ़ता है। यूनेस्को के भूतपूर्व महानिदेशक रेने महयू के शब्दों में "यदि मानव होने के नाते व्यक्ति की गरिमा का यह परमावश्यक अंग है कि उस समुदाय की सांस्कृतिक विरासत और सांस्कृतिक गतिविधियों में सम्मिलित होने का अधिकार भी है इसका अभिप्राय यह भी है कि जिन अधिकारियों पर इन समुदायों की जिम्मेदारी है, उनका कर्त्तव्य है कि जहां तक धन की दृष्टि से संभव हो वहां तक हर व्यक्ति को सांस्कृतिक क्रियाकलापों में सम्मिलित होने के साधन उपलब्ध करें।"

इस उद्देश्य से प्रेरित होकर हिमाचल प्रदेश की साहित्य एवं संस्कृति एकादमी को उन क्रिया कलापों को जो पहले बिखरे हुए थे, एक जगह लाना और समन्वित करना चाहिए जिससे जनता यह समझ सके कि यह ज्ञान कितना मूल्यवान है, जिससे इसकी मौलिकता निरन्तर कायम रखी जा सकती है। हिमाचल प्रदेश की लोक कला और संस्कृति भी अन्य क्षेत्रों की तरह राष्ट्र की मूल्यवान विरासत है।

निःसंदेह कला सृजन की स्वतंत्रता में सरकार का हस्तक्षेप अनावश्यक और हानिकारक ही रहता है पर राज्य ऐसी सामाजिक और कानूनी व्यवस्थाएं पैदा कर सकता है जिनमें कलाकार अपने आपको पूरी तरह प्रस्तुत कर सके और अपने व्यक्तित्व की समस्त जटिल रूप अभिव्यक्त कर सके क्योंकि सभी कलाओं के मूल से आत्मनिवेदन है। प्रत्येक जाति का आत्म प्रकाशन अपनी संस्कृति के

अनुसार ही होता है। चूकि लोक-नत्य जीवन गति से सीधे सम्बन्धित है इसलिए इनम किसी आदश या परानुभूति को सीधी अभिव्यक्ति मिलने की अपेक्षा जीवन के उल्लास का प्रकटीकरण अधिक होता है तभी तो वह जीवन गति के आदश प्रतीक माने जाते है। इन्ही लोक-नृत्यो ने लोक-जीवन को आनन्दमय बना, लोक कला को सुरक्षित रखा है तथा लोक-जीवन की मिठास प्रकाश और उल्लास स भरकर, उसे सच्चे अर्थों म सस्कृति बना दिया है। हिमाचल प्रदेश क इन लोक नत्यो का अपना विशष आकषण है। आज भी इनका महत्त्व किसी तरह कम नही हुआ, बल्कि इसके प्रति नए आकपण की भावना जागत हुई है।

कला सस्कृति का सार है और सस्कृति भी स्वयमेव क्या है ? इनस मानव एव राष्ट्र के विजन (vision) का विस्तार होता है। कला और सस्कृति के प्रति मानव एव राष्ट्र के विजन का विस्तार होता है। यह अनुराग राष्ट्रोत्थान का एक शुभ चिह्न है। गाधी के शब्दो म नान द्वारा ही चरित्र निर्माण होता है। बिना चरित्र के, बिना उच्च और सुदढ अनुशासन के जीवन की शाश्वत शक्ति सप्राण नही रह सकती। कला और सस्कृति उस अमरता प्रदान करने मे सक्षम है। सभी कलाओ म एक विशषता होती है, वि व सभी मनुष्यो को मिलती है।

सदर्भ ग्रन्थ सूची

1 नत्य भारती (1962) सगीत कार्यालय हाथरस आचाय सुधाकर
2 हिमाचल गौरव (1971) सन्माग प्रकाशन दिल्ली 7, प्रो० हरिराम जसटा
3 नत्य सागर (1942) कृष्णचन्द्र निगम सगीत कार्यालय हाथरस
4 लोक कला परम्परा (नया समाज, अक्टूबर, 1952), श्री राम इकबाल सिह
5 जुब्बल के लोकनत्य (हिमाचल कल्पद्रुम, वष 1, अक 8), श्री गवधन सिह
6 लोकनत्य एव लोक वाद्य (सम्मेलन पत्रिका, 1940) श्रीमती शाति अवस्थी
7 नत्य कला और शिक्षा केन्द्र श्री उदय शकर
8 भारत के लोकनृत्य (1974) राजपाल एड सन्ज, दिल्ली, डॉ० श्याम परमार
9 किन्नौर का लोक साहित्य (1976) ललित कला प्रकाशन बिलासपुर, डॉ० बशीराम शर्मा
10 कुलूत देश की कहानी (नील कमल प्रकाशन, कुल्लू), श्री लालचन्द प्रार्थी
11 लोक वार्ता की पगडडिया, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर, डॉ० सत्येन्द्र
12 भारतीय लोक-नत्य (1957) भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर, श्री देवीलाल सामर
— हिमाचल की लोक-सस्कृति—डॉ० हरिराम जसटा, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली 7
— पवतो की गूज, डा० हरिराम जसटा (किताब घर)
13 Farmer s in India(1959) Vol I ICAR, Dr M S Randhawa
14 Folk Dances of India (Bhavan s Journal, October, 29 1961) Mohan Khokar
15 Facets of Indian Culture (1962) Bharatiya Vidya Bhavan Bombay B Srinivasan
— Folk Tales of Himachal Pradesh (1980), (Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay) Dr H R Justa & S P Ranchan

16 Indian Dancing (Bhavan's Journal 'August, 1972), Kanak Rele

17 Dance in India (1962), Sushil Gupta, Calcutta, Ragini Devi

18 Modern Dance (1968), Adam & Charles, London, Jane Wincals

19 Indian Dances (1967), Reena Singha, Reginald Massey (Faber & Faber, London)

20 The Dance of Shiva (1956), Asia Publication of Bombay, Anand Coomarsawamy

21 Musical Instruments of India (1971) Publication Division Govt of India, New Delhi S Krisana Swamy

22 Indian Folk Musical Instruments (1968), Sangeet Natak Akademi, New Delhi, K S Kothari

23 District Gazetteer of Kinnaur (1971)

24 —do— Lahaul & Spiti

25 —do— Chamba (1963) H P Govt

26 —do— Sirmour (1969) Publications

27 —do— Bilaspur (1971)

28 Folk Dances of India (1956), Publication Division, Delhi

29 Dances of India (1965), Enakshi Bhawani, D B Taraporewala, Bombay

30 Classical and Folk Dances of India (1963) Marg Publi cation, Bombay

31 Folk Dances of India, Kapila Vatsayan, Clatrion, Delhi

अनुक्रमणिका

□□